ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती

वर्ष 52 अंक 03

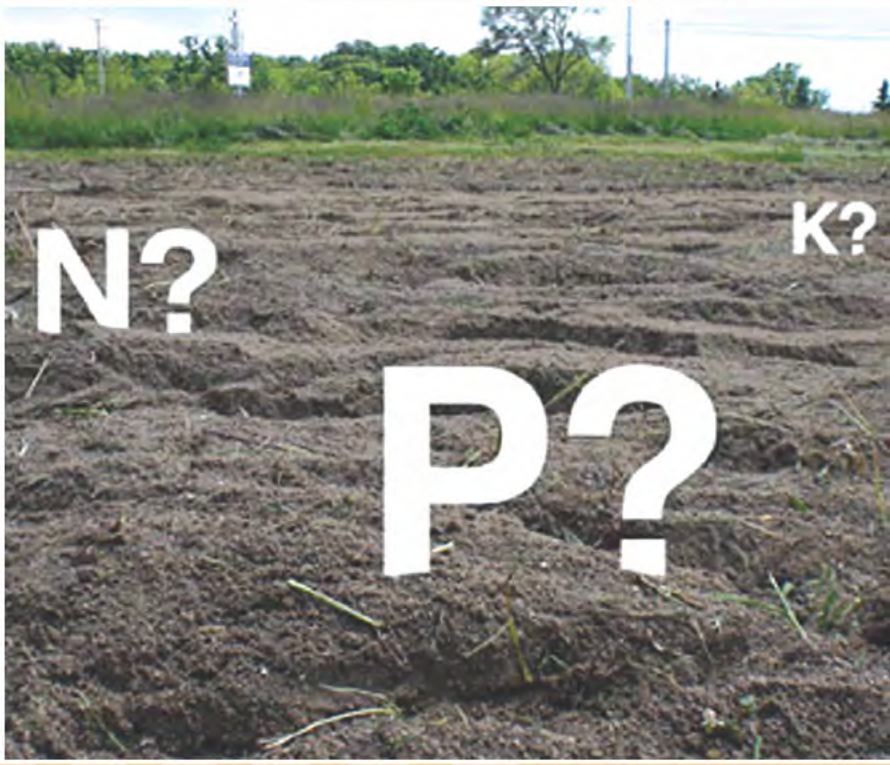

कृषि मेला (खरीफ)

दिनांक : 12-13 मार्च, 2019

स्थान : गेट नं. 3, विश्वविद्यालय फार्म, बालसमंद रोड़, हिसार

वार्षिक चंदा 150/- मार्च 2019 आजीवन सदस्यता 1500/-

प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित © कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 52 | मार्च 2019 | अंक 03

इस अंक में

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ
धान–गेहूं फसल चक्र – ग्रीष्म कालीन मूंग की खेती	✍ विरेन्द्र सिंह हुड्डा, मीनाक्षी सांगवान एवं मीना सुहाग	2
चने में सूण्डी : समस्या और रोकथाम	✍ जयलाल यादव, रमेश कुमार एवं सुरेन्द्र सिंह यादव	3
सब्जी फसलों में – खरपतवार नियन्त्रण	✍ सतबीर सिंह पूनिया एवं विरेन्द्र हुड्डा	4
अमरूद के प्रमुख कीट एवं उनका समन्वित प्रबन्धन	✍ सुरेन्द्र सिंह यादव, सुनीता यादव एवं मनदीप राठी	7
फलवृक्षों की काट–छांट	✍ रणबीर सिंह सैनी, सुरेन्द्र सिंह एवं मुकेश कुमार	9
रबी की तिलहनी फसलों में सल्फर का महत्त्व	✍ मुकेश कुमार जाट, प्रमोद कुमार यादव एवं रामस्वरूप दादरवाल	11
मृदा को स्वस्थ रखने के विकल्प एवं प्रबंधन	✍ पूजा रानी, नरेंदर कुमार एवं विकास कुमार	12
किसान कॉल सैंटर : एक परिचय	✍ अशोक कुमार एवं राजेश कुमार	18
भूमि की उर्वरा शक्ति : हरी खाद	✍ धर्म प्रकाश, सुनीता श्योराण एवं देवराज	18
उर्वरकों की पहचान : कैसे करें	✍ सोनिया देवी, के. के. भारद्वाज एवं विशाल गोयल	20
बीज उत्पादन के आनुवांशिक सिद्धान्त	✍ सुनील कुमार एवं सतबीर सिंह जाखड़	21
पोर्टेबल वर्मीकम्पोस्ट किट	✍ रवीना कारगवाल, यादविका एवं एम. के. गर्ग	23
सौर ऊर्जा संचालित – टपका सिंचाई प्रणाली	✍ प्रमोद शर्मा, कनिष्क वर्मा एवं वाई. के. यादव	24
जल भराव : समस्या एवं समाधान	✍ नरेंद्र कुमार, प्रमोद शर्मा एवं संजय कुमार	25
केंचुओं पर धातुओं के प्रभाव	✍ शेफाली एवं आर. के. गुप्ता	26
पारंपरिक प्रथा से अनाज भण्डारण	✍ पूजा, एस. एस. ढांडा एवं दीपिका राठी	27
Rohida : Marwar Teak of Thar Desert	✍ Sandeep Arya, Neeraj Kumar and Naresh Kaushik	29
Low Cost Storage Facility for Fresh Fruits and Vegetables	✍ Sumit Deswal and Manender Singh	30
Physiological Disorders of Potato : Their Management	✍ Vinod Kumar, S.K. Tehlan and Vikash Kumar	31
स्थाई स्तम्भ : अप्रैल मास के कृषि कार्य		13

हरियाणा खेती
सम्बन्धी
स्वामित्व विवरणी
फार्म–4 [देखिये नियम 8]

प्रकाशन स्थान	:	चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार।
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
मुद्रक का नाम	:	डॉ. आर. एस. हुड्डा
क्या भारत का नागरिक है ?	:	हां
(यदि विदेशी है तो मूल देश)	:	–
पता	:	निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय चौ. च. सिं. ह. कृ. वि., हिसार।
प्रकाशक का नाम	:	डॉ. आर. एस. हुड्डा
क्या भारत का नागरिक है ?	:	हां
संपादक	:	डॉ. सुषमा आनन्द
क्या भारत का नागरिक है ?	:	हां
(यदि विदेशी है तो मूल देश)	:	–
पता	:	संपादक हिन्दी, प्रकाशन अनुभाग, चौ. च. सिं. ह. कृ. वि., हिसार।
उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार–पत्र के स्वामी हों तथा समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के सांझेदार या हिस्सेदार हों।	:	चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार।

मैं, आर. एस. हुड्डा, एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

हस्ताक्षर
आर. एस. हुड्डा
प्रकाशक

तकनीकी सलाहकार :
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
विस्तार विशेषज्ञ (विस्तार शिक्षा)
विस्तार शिक्षा निदेशालय

सह–निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह–निदेशक (हिन्दी)

सुनीता सांगवान
सम्पादक (अंग्रेजी)
प्रकाशन अनुभाग

आवरण एवं सज्जा
राजेश कुमार

लेखकों से अनुरोध : हरियाणा खेती के लेख में कृपया कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। अपना लेख हमें ई–मेल haryanakhetihau@gmail.com पर भी भेज सकते हैं।

धान-गेहूं फसल चक्र– ग्रीष्म कालीन मूंग की खेती

✍ **विरेन्द्र सिंह हुड्डा, मीनाक्षी सांगवान एवं मीना सुहाग**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

धान–गेहूं फसल चक्र के लम्बे समय से प्रचलित होने के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति में कमी, भूमिगत जल स्तर में गिरावट, खरपतवारों में प्रतिरोधकता की समस्याओं के साथ–साथ धान व गेहूं की उत्पादकता भी स्थिर हो गई है जिसके कारण आज के संदर्भ में धान–गेहूं फसल चक्र में विविधीकरण की ओर प्रयास किये जा रहे हैं। लगातार कृषि लागत में वृद्धि से प्रति इकाई मुनाफा भी घट रहा है। इसके अलावा हमारे देश में कृषि पर निर्वहन करने वाली करोड़ से ज़्यादा जनसंख्या, लगातार घटी हुई जोत, सूखे व बाढ़ का प्रकोप, विश्व व्यापारीकरण की चुनौतियां आदि कारकों ने कृषकों व उनका हित सोचने वालों को नवीनतम व उन्नत कृषि तकनीकों के बारे में सोचने पर बाध्य कर दिया है जिसमें कम से कम संसाधनों का प्रयोग करके भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रख कर कम लागत में ज़्यादा मुनाफा कमाया जा सके। इन परिस्थितियों में अनाज वाली फसलों के साथ दलहनी फसलों को उगाना लाभदायक है।

धान–गेहूं फसल चक्र में ग्रीष्म कालीन मूंग को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है क्योंकि गेहूं की कटाई व धान की रोपाई के बीच में ज़्यादा दिन तक खेत खाली रहते हैं। इस दौरान किसान सांठी धान लगाने की कुप्रथा में लिप्त रहते हैं। ग्रीष्म कालीन मूंग की काश्त करने से न केवल सांठी धान लगाने की कुप्रथा कम होगी बल्कि भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ने के साथ साथ जल जैसे प्राकृतिक संसाधन को भी बचाया जा सकेगा। ग्रीष्म कालीन मूंग उगाने के कई लाभ हैं :

- ग्रीष्म में खरपतवारों का प्रकोप कम होता है।
- कम आर्द्रता के कारण बीमारियों व कीड़ों का प्रकोप कम होता है।
- जल्दी पकने से वर्षा आदि से बचाव हो जाता है।
- प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग हो जाता है।

किसान की अतिरिक्त आय के साथ–साथ देश की विदेशी मुद्रा की बचत होती है व भूमि सुधार होता है।

इस तरह ग्रीष्म कालीन मूंग प्रचलित धान–गेहूं के फसल चक्र में मूल्य संवर्धन का कार्य करती है। धान–गेहूं कृषि पद्धति के आलावा तोरिया, आलू, सरसों, मटर, गन्ना व कभी–कभी रबी की फसल खराब होने के कारण भी खेत मार्च महीने से अगली खरीफ की फसल लगने तक खाली रहते हैं। ऐसे खेतों में ग्रीष्म कालीन मूंग को उगाकर उनका सदुपयोग किया जा सकता है।

ग्रीष्म कालीन मूंग में कृषि क्रियाएं : ग्रीष्म कालीन मूंग की सफल खेती के लिए किसान भाई निम्न उन्नत तकनीक या कृषि क्रियाएं अपना कर अच्छी पैदावार ले सकते हैं।

उपयुक्त किस्म का चुनाव : ग्रीष्म कालीन मूंग के लिए कम अवधि तथा एक समय में पकने वाली किस्में उपयुक्त होती हैं। एमएच–421, एम एच– 318, बसंती, सत्या व एसएमएल–668 उन्नत शील किस्में हैं।

भूमि का चयन व तैयारी : मूंग के लिए दोमट मिट्टी या रेतीली दोमट मिट्टी उपयुक्त रहती है लेकिन भारी मिट्टी में भी इसकी सफल खेती की जा सकती है। अम्लीय या क्षारीय भूमि में मूंग को न उगायें।

बिजाई का समय : ग्रीष्म कालीन मूंग में बिजाई का समय ठीक होना अति आवश्यक है क्योंकि यह पैदावार के साथ–साथ आगामी फसल पर भी प्रभाव डालता है। मार्च का पूरा महीना मूंग की बिजाई हेतु उत्तम है लेकिन अप्रैल के पहले पखवाड़े तक भी इसकी बिजाई की जा सकती है। बिजाई ज़्यादा पछेती करने से अधिक तापमान, गर्म शुष्क हवा तथा अगेती मानसून आदि से उत्पादन पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है।

बीज दर व अंतरण : ग्रीष्म काल में खरीफ मौसम की अपेक्षा पौधों की बढ़वार कम होती है। इसलिए बीज की मात्रा खरीफ मौसम से ज़्यादा डालें। बीज की मात्रा 10–12 कि. ग्रा. प्रति एकड़ डालें तथा खुड से खुड का फासला 20–25 सैं.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 8–10 सैं.मी. रखें।

बीजोपचार : बीज को बोने से पहले पानी में भिगोयें। ऐसा करने से हल्का व खराब बीज पानी के ऊपर तैर जायेगा जिसे निकाल दें। बाकी बीज को तुरंत निकाल के सुखाएं। जड़ गलन रोग के बचाव के लिए प्रति कि.ग्रा. बीज का 4 ग्रा. थाइरम से सूखा उपचार करें। उसके कुछ घंटे बाद बीज का राइजोबियम के टीके से उपचार करें तथा बीज को छाया में सुखाएं। राइजोबियम के टीके हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से प्राप्त किये जा सकते हैं।

उर्वरक : बिजाई के समय 6–8 कि. ग्रा. शुद्ध नाइत्रोजन प्रति एकड़ व 16 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति एकड़ डालें। इसके लिए 13–17 कि.ग्रा. यूरिया व 100 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें। खेत में अगर ज़िंक कि कमी हो तो 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ की दर से डालें।

सिंचाई : ग्रीष्म कालीन मूंग की काश्त सिंचित क्षेत्रों में ही की जाती है। अच्छी नमी में बिजाई की गई फसल में पहली सिंचाई 20–22 दिन बाद लगायें व उसके बाद 10–15 दिन बाद आवश्यकतानुसार सिंचाई करें।

खरपतवार नियंत्रण : खरपतवारों की रोकथाम के लिए पहली निराई गोड़ाई 20–25 दिन बाद व दूसरी 35–40 दिन बाद करें। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए पेंडीमेथालिन (स्टॉम्प 30 ई.सी.) नामक खरपतवारनाशक की 1.25 लीटर मात्रा या ट्राईफ्लुरालिन (ट्रेफ्लान) की 1.0 लीटर मात्रा को 250–300 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई के तुरंत बाद छिडकें। इन खरपतवारों के छिड़काव के समय खेत में अच्छी नमी हो। इनका प्रयोग करने से सांठी, सांवक, मकड़ा

व कोंधरा की अच्छी रोकथाम हो जाती है।

पौध संरक्षण : वैसे तो ग्रीष्म कालीन मूंग में कीड़ों व बीमारियों का प्रकोप खरीफ फसल की अपेक्षा कम होता है, फिर भी विषाणु रोग का प्रकोप कम करने के लिए सफेद मक्खी व तेला की रोकथाम हेतु 400 मि.ली. मेलाथियान 50 ई.सी. या 250 मि.ली. डाईमिथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. या 350 मि.ली. ऑक्सीडेमेटोन मिथाइल (मेटासिस्टॉक्स) 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़कें। बालों वाली सूंडी की रोकथाम के लिए 250 मि.ली. मोनोक्रोटोफॉस (मोनोसिल या न्यूवाक्रोन) 36 एस. एल. या 500 मि. ली. क्विनलफास (एकालक्स) 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। यदि पत्तों पर, तनों पर या फलियों पर कोनदार भूरे लाल धब्बे दिखाई दें तो इंडोफिल एम.-45 या ब्लाईटॉक्स की 600-800 ग्राम मात्रा को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। पत्तों के जीवाणु रोग, जिसमें पत्तों की सतह के नीचे छोटे-छोटे जलसिक्त बिंदु नज़र आते हैं, की रोकथाम हेतु 600-800 ग्रा. कॉपरआक्सीक्लोराइड को 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें।

कटाई व गहाई : जब 70 से 90 प्रतिशत फलियां पक जाएं (फलियों का रंग काला या भूरा हो जाये) तब फसल की कटाई एक बार में कर लें तथा 7-8 दिन धूप में अच्छी तरह सुखा कर बीजों को निकालें।

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक नि:शुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

चने में सूण्डी : समस्या और रोकथाम

✍ **जयलाल यादव, रमेश कुमार एवं सुरेन्द्र सिंह यादव**
कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत की दलहनी फसलों में चना प्रमुख फसल है। चने का योगदान क्षेत्रफल तथा पैदावार के हिसाब से क्रमश: लगभग 40 प्रतिशत व 48 प्रतिशत है। हरियाणा के पश्चिमी क्षेत्रों में चने का विशेष महत्व है। चने के अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का लगभग 88 प्रतिशत क्षेत्र पश्चिमी ज़िलों में ही है। हरियाणा में 2015-2016 के आंकड़ों से चने का कुल क्षेत्रफल 58000 हैक्टेयर, पैदावार 49000 टन तथा औसत पैदावार 845 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर है। चने की पैदावार अपेक्षित पैदावर से काफी कम है। इस कम उत्पादन के लिए कीट भी ज़िम्मेदार हैं जिनमें चने की सूण्डी सबसे ज़्यादा नुकसान करती है। इस कीट के प्रकोप एवं नुकसान को ध्यान में रखते हुए किसानों की जानकारी हेतु इसका जीवन चक्र, नुकसान करने की विधि व उचित रोकथाम का वर्णन इस लेख में दिया गया है। इस कीट को चने की टाट की सूण्डी या लोई या फली छेदक सूण्डी भी कहते हैं। यह कीट 181 प्रकार के पौधों को नुकसान पहुँचाता हुआ पाया गया है जिसमें 60 के लगभग उपयोगी फसलें, पौधे तथा बाकी खरपतवार व जंगली पौधे हैं।

सूण्डी की पहचान : अण्डे से निकलने पर सूण्डी बहुत छोटी होती है और उसका रंग प्राय: लाल भूरा होता है। सूण्डी बड़ी होने पर 3.5 सैं.मी. लंबी हो जाती है और उस पर तीन लंबी धारियां दिखाई देती हैं। सूण्डी के अनेक रंग हो सकते हैं किंतु मुख्यत: हरे या पीले रंग में मिलती है।

जीवन चक्र : इस कीट की चार अवस्थाएं हैं - अण्ड़ा, सूण्डी, प्यूपा और तितली। प्रौढ़ मादा तितली हल्के भूरे रंग की है जो रात के समय लगभग 1000 अण्डे अपने जीवनकाल में पौधों की कलियों, फूलों, पत्तियों व फलियों पर प्राय: एक-एक करके देती है। इन अण्डों में से 2-4 दिन में सूण्डियां निकल आती हैं जो 2-4 सप्ताह में पूरी बड़ी होकर प्यूपा बन जाती हैं। प्यूपा जो कि भूरे रंग का होता है ज़मीन के भीतर 2.5 सैं.मी. की गहराई में मिलता है। प्यूपा में से तितली एक सप्ताह के अन्दर निकल आती है। अनुकूल मौसम में इसका जीवन चक्र 3-4 सप्ताह में पूरा हो जाता है। यह कीट साल में 5-7 पीढ़ियां पूरी करता है। विविध भक्षी होने के कारण यह कीट मनचाही फसलों पर वर्ष भर बढ़ता एवं प्रजनन करता है। दिसम्बर से अप्रैल तक यह कीट चना और मटर पर, मई से जुलाई के दौरान टमाटर, भिण्डी, बरसीम, सूरजमूखी और मक्का (चारा) पर, कभी-कभी अप्रैल के महीने में गेहूँ पर, अगस्त से अक्तूबर तक कपास, अरहर और भिण्डी इत्यादि पर तथा नवम्बर-दिसम्बर में अरहर तथा चना पर रहता है। सर्दी के मौसम में यह कीट प्यूपा के रूप में सुप्तावस्था में चला जाता है।

नुकसान : कब और कैसे : चने में इस कीट का प्रकोप मार्च के महीने में सबसे अधिक होता है। यह चने का भयानक शत्रु है। किसी-किसी वर्ष छोटी फसल को अक्तूबर से दिसम्बर में भी काफी हानि

हो जाती है। फसल को हानि केवल सूण्डी से होती है। छोटी अवस्था में सूण्डी पत्तियों, कलियों और फूलों को खाती है और बड़ी होने पर फली (टाट) में छेद करके बढ़ते हुए दानों को खाती है जिससे पैदावार बहुत कम हो जाती है। टाट के दानों को खाते समय बड़ी सूण्डी का अधिकतर भाग बाहर ही लटका रहता है। टाट खोखली होकर सूख जाती है। प्रयोगों के आधार पर देखा गया है कि एक सूण्डी अपने जीवनकाल में 30 से 40 फलियों (टाटों) को नष्ट कर देती है। पौधों पर काले रंग के मल-मूत्र के अवशेषों का मिलना सूण्डी होने का संकेत देता है। सर्दियों की वर्षा, अधिक तापमान व आकाश में बादल छाए हों तो यह कीट अधिक बढ़ता है व फसल में नुकसान भी ज़्यादा होने की संभावना होती है। देर से बीजी गई फसलों व जहां सिंचाई की सुविधा हो इस कीट का प्रकोप ज़्यादा होता है।

रोकथाम : कब और कैसे :

- फसल की बिजाई समय पर करें।
- अरहर की कटाई के बाद खेतों की गहरी जुताई करें ताकि सूण्डी की सुप्तावस्था में प्यूपा बाहर आने पर नष्ट हो जाए।
- इस कीट का प्रकोप कम करने के लिए चटरी-मटरी नामक खतपतवार के ऊंचे सिरों को मार्च के दूसरे सप्ताह में निकाल देना चाहिए क्योंकि मादा तितली चटरी-मटरी खतपतवार को चने की अपेक्षा अण्डे देने के लिए ज़्यादा उपयुक्त समझती है। इससे 30 से 35 प्रतिशत नुकसान को कम किया जा सकता है।
- चने की फसल के साथ गेहूं, लोबिया, सरसों और कुसुम की खेती करने से इस कीट द्वारा नुकसान रोका जा सकता है।
- समय-समय पर इस कीट के प्रकोप का पता लगाने के लिए चने की एक मीटर लंबी पौधों की कतार को कागज़ बिछाकर झाड़ने से लगाया जा सकता है। खेत में 8-10 स्थानों पर एक-एक मीटर में सूण्डियों की संख्या गिन लें। यदि एक मीटर में औसत एक या एक से अधिक सूण्डी हो तो नीचे लिखी कीटनाशकों में से किसी एक का प्रयोग करें।
- जब पौधों में करीब 50 प्रतिशत टाट बन गए हों या एक सूण्डी प्रति मीटर लंबे खूड़ में मिले तब 400 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. या 200 मि.ली. मोनोक्रोटाफास 36 एस.एल. या 80 मि.ली. फैनवालरेट 20 ई.सी. या 50 मि.ली. साइपरमैथरीन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. डैकामैथरिन 2.8 ई.सी. का 100 लीटर पानी में घोल बना कर या 150 मि.ली. नोवालूरॉन (रिमोन) 10 ई.सी. का 150 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। पानी की कमी वाले इलाकों में 10 किलोग्राम क्विनलफॉस 1.5 डी या कार्बेरिल 5 डी प्रति एकड़ धूड़ा करें। यदि ज़रूरी हो तो दूसरा छिड़काव या धूड़ा 15 दिन बाद फिर करें।
- बड़ी सूण्डियों को हाथ से इकट्ठा करके नष्ट करें।

सब्जी फसलों में - खरपतवार नियन्त्रण

✍ **सतबीर सिंह पूनिया एवं विरेन्द्र हुड्डा**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा के शहरी इलाकों या उनके साथ लगते गांवों में काफी मात्रा में सब्जियां उगाई जाती हैं। प्रान्त में मुख्यत: आलू, प्याज़, लहसुन, मटर, भिण्डी, टमाटर, हल्दी, बैंगन, पत्ता गोभी, मेथी व फूलगोभी की काश्त ज़्यादा की जाती है। ये फसलें शुरू की अवस्था में कम बढ़वार लेती हैं और अगर वातावरण अनुकूल हो तो खरपतवारों की समस्या और बढ़ जाती है। सब्जी की फसल बोने से पहले आमतौर पर खेत में गोबर की खाद डाली जाती है जिस की वजह से भी खरपतवार ज़्यादा उगते हैं। इस के अलावा, सब्जी की फसलों में ज़्यादा सिंचाई की ज़रूरत पड़ती है जिस कारण खेत में नमी रहती है और खरपतवारों की बढ़वार भी जल्दी होती है व खरपतवारों को फलने-फूलने के लिए अच्छा मौका मिल जाता है। इन सभी कारणों की वजह से कई बार खरपतवार सब्जी की फसल को शुरू की अवस्था में ही ढक लेते हैं। अगर खरपतवारों को समय पर न निकाला जाये तो पैदावार में औसत 25-55 प्रतिशत तक कमी आ जाती है। प्रयोगों द्वारा पता चला है कि खरपतवारों द्वारा गाजर की फसल में 28-78%, मूली में 86%, आलू में 62-82%, मटर में 70%, पत्तागोभी में 66%, टमाटर में 60 प्रतिशत तक नुकसान आंका गया है। इस के अलावा खरपतवार फसलों में कई बीमारियों व कीड़ों को भी आश्रय देते हैं। इसलिए ज़रूरी है कि फसलों में खरपतवारों का उचित समय पर नियंत्रण किया जाए।

खरपतवार निकालने का उचित समय : यह समय पौधे की पूर्ण उम्र में वह समय है जिस समय खेत में खरपतवार नहीं होने चाहियें और पैदावार में कमी न हो। अगर इस समय में फसल में खरपतवार नहीं होंगे तो पैदावार में कोई कमी नहीं आएगी। इस समय के बाद उगे हुए खरपतवार फसल में ज़्यादा नुकसान नहीं करते परन्तु इस समय के बाद खेत में अगर खरपतवार नियंत्रण करते हैं तो कटाई आसानी से हो जाती है व अगले साल के लिए खरपतवारों का बीज नहीं बन पाता। खरपतवार नियंत्रण का यह नाजुक समय सीधी बीज द्वारा लगाई गई फसलों में रोपाई की फसलों की अपेक्षा ज़्यादा होता है। आमतौर पर खरपतवारों की संख्या व मौसम के हालात पर इस समय की लम्बाई निर्भर करती है। विभिन्न फसलों को खरपतवार रहित रखने का नाजुक समय सारणी 1 में नीचे दिया गया है।

आमतौर पर सब्जी की फसल में ऋतु के अनुसार एक वर्षीय, दो वर्षीय व बहु वर्षीय डीला जाति वाले खरपतवार आते हैं। इस के इलावा कई जगह बैंगन व टमाटर की फसल में परजीवी खरपतवार मरगोज़ा का प्रकोप भी देखने को मिलता है। प्याज़ की फसल में अमर बेल भी काफी नुकसान करती है।

इसलिए खरपतवारों को समय पर निकालना बहुत ज़रूरी है। इन फसलों में खुरपे से गोड़ाई द्वारा या हाथ द्वारा खरपतवार नियन्त्रण काफी

सारिणी 1 : विभिन्न फसलों को खरपतवार रहित रखने का समय

फसल	खरपतवार रहित रखने का समय
गाजर	जमाव के 3–6 सप्ताह बाद तक
पालक	लगाने के 3 सप्ताह बाद तक
प्याज़	सारी अवधि
आलू	लगाने के बाद 15–45 दिन तक
टमाटर	रोपाई के 6 सप्ताह बाद तक
मिर्च	रोपाई के बाद 30–45 दिन तक
मटर	लगाने के बाद 30–60 दिन तक
हल्दी	लगाने के बाद 60–150 दिन तक

प्रचलित है परन्तु कई बार मज़दूर समय पर न मिलने या ज़्यादा बारिश के कारण निराई–गुडाई समय पर सम्भव नहीं हो पाती, अत: ऐसे हालात में खरपतवारनाशकों का प्रयोग करके भी खरपतवारों पर काबू पाया जा सकता है। खरपतवारनाशक का प्रयोग करके निम्नलिखित फसलों में समय पर व अच्छी तरह खरपतवार नियन्त्रण मिल सकता है।

प्याज़ : प्याज़ की फसल में खरपतवार की समस्या बहुत ज़्यादा होती है यह 67 प्रतिशत तक उपज को नुकसान पहुंचा सकते हैं क्योंकि इस में दो तरह के खरपतवार आते हैं। पहले सर्द ऋतु वाले खरपतवार जैसे कि मैणा, कृष्णनील, बायु, खड़बायु, गुल्लीडण्डा, जंगलीपालक, मालवा इत्यादि। फरवरी के महीने में उचित तापमान आने पर बसन्त ऋतु व गर्म ऋतु वाले खरपतवार जैसे कि चौलाई, सांठी, डीला, हिरणखुरी, कोंधरा, नूणिया, चिड़ियों का दाना इत्यादि काफी मात्रा में उगते हैं। इस फसल में खरपतवारों की रोकथाम के लिए स्टॉम्प 30 ई.सी. (पैंडीमिथेलिन) 1.3–1.7 लीटर प्रति एकड़ का छिड़काव रोपाई के 7–8 दिन बाद जब पौधे व्यवस्थित हो जाते हैं और खरपतवार निकलने शुरू हो जाते हैं, करना चाहिए। इस दवाई का घोल तैयार करने के लिए एक एकड़ फसल में छिड़काव करने हेतु 250 लीटर पानी की मात्रा प्रयोग करें। यदि 50–60 दिन बाद खरपतवार पुन: निकलते हैं तो एक निराई करना लाभप्रद है। प्याज़ में गोल का छिड़काव करने पर पत्तियों की नोक पर थोड़ा दुष्प्रभाव पड़ता है परन्तु 20 दिन बाद ठीक हो जाती हैं व पैदावार में कोई कमी नहीं आती। अगर स्टॉम्प का प्रयोग न करें तो छिड़काव तर बत्तर ज़मीन में एक सार होना ज़रूरी है। यह खरपतवार रोपाई के पहले या रोपाई के 10 दिन के अन्दर राफ्ट 667 मि.ली. या गोल नामक रसायन 340 मि.ली. प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करने या रेत में मिलाकर डालने से खरपतवारों का अच्छा नियंत्रण पाया जा सकता है तथा एक गुडाई रोपाई के 45 दिन बाद अवश्य करें। गोल व स्टॉम्प खरपतवारनाशक छिड़काव के 90 दिन के अन्दर–2 इस फसल में गल जाते हैं व हरी प्याज़ में उनका कोई अंश नहीं मिलता। ये खरपतवार नाशक मोथे या डीले के प्रति प्रभावशाली नहीं हैं।

लहसुन : इस फसल में आमतौर पर सर्दी ऋतु वाले खरपतवार जैसे बायु, कृष्णनील, मैण, जंगलीपालक, खड़बाथु, पोआ, गुल्लीडण्डा व लोम्बड़ घास उगते हैं। इस फसल में खरपतवारों की रोकथाम के लिए स्टॉम्प 30 ई.सी. (पैंडीमीथालिन) या बासालिन 45 ई.सी. (फ्लूयक्लोरालिन) का प्रयोग किया जा सकता है। ये खरपतवारनाशक इस फसल के मोथे (डीले) को छोड़कर सारे खरपतवारों का नाश कर देते हैं। स्टॉम्प (1.3–1.7 लीटर प्रति एकड़) का फसल बिजाई के 48 घण्टे के अन्दर–2 (लहसुन उगने से पहले) 250 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए। जब कि बासालीन या ट्रैफलान (1.0 लीटर/एकड़) का खेत अच्छी तरह तैयार करके लहसुन बुवाई से पहले छिड़काव करना चाहिए। बासालीन व ट्रैफलान का छिड़काव करने के बाद कसोले या कस्सी से अच्छी तरह मिट्टी में मिलाना ज़रूरी है। इस के बाद लहसुन की कलियां खेत में लगाकर हल्का पानी दे दें। इसके इलावा राफ्ट 9 ई.सी. 667 मि.ली. या गोल 23.5 ई.सी. 340 मि.ली. को 250 लीटर पानी में घोल कर लहसुन के बाद 10 दिन के अन्दर–अन्दर छिड़काव कर सकते हैं। इसके बाद भी अगर खरपतवार उगते हैं तो 50–60 दिन बाद एक निराई–गुड़ाई आवश्यक है। फसल पकने से डेढ़ महीने पहले हिरणखुरी खरपतवार पुन: उग जाता है। इस अवस्था में राफ्ट नामक रसायन का 667 मि.ली. प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। उपर्युक्त दवाइयों का कच्ची व पकी हुई कलियों में कोई असर नहीं आता।

आलू : इस फसल में पतझड़, सर्दी व बहार ऋतु वाले तीनों तरह के खरपतवार पाये जाते हैं। अगर आलू की बिजाई सितम्बर माह में की जाती

सारणी 2: आलू की फसल में प्रयोग किए जाने वाले विभिन्न खरपतवारनाशक

खरपतवारनाशक	मात्रा/एकड़	छिड़काव का समय
स्टॉम्प 30 ई.सी.	1.6–2.0 लीटर	पहले पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
आइसोप्रोट्यूरान 75 डब्ल्यू. पी.	500 ग्राम	पहले पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
मैनकोर 70 डब्ल्यू. पी.	200 ग्राम	पहले पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
लासो 50 ई.सी.	2.0–2.4 लीटर	पहले पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
एट्राजीन 50 डब्ल्यू.पी.	200 ग्राम	पहले पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
लासो + राट्राजीन	1.0 लीटर + 100 ग्राम	पहले पानी के बाद व खरपतवार उगने से पहले
ग्रमैक्सोन 24 डब्ल्यू.एस.सी.	1.0–1.20 लीटर	जब आलू के 5–10 प्रतिशत पौधे उग जायें।

है तो फसल उगने में तीन सप्ताह का समय ले लेती है व कई बार सांठी (ईटसिट) फसल को पूरी तरह ढक लेती है। अक्तूबर माह में बोई गई फसल में सांठी, बाथु, खड़बाथु, मैणा, घुई, कृष्णनील, जंगलीपालक, आदि खरपतवार पाये जाते हैं। नवम्बर दिसम्बर महीने में गुल्ली डण्डा (कनकी) खरपतवार धान के बाद बोई गई ज़मीन में पाया जाता है। अगर गोबर की खाद डालकर आलू की बिजाई की जाती है तो मालवा खरपतवार भी काफी मात्रा में दिखाई पड़ता है। इस फसल में खरपतवारों की रोकथाम सारणी–2 में दी गई जानकारी अनुसार करें।

जब खरपतवार छोटे हों तो ग्रमैक्सोन की 1.0 लीटर मात्रा व जब खरपतवार बडे हो जायें तो 1.20 लीटर मात्रा प्रति एकड़ का प्रयोग करें। अगर आलू के खेत में पोआ (फुई) का प्रकोप है तो ग्रेमक्सोन का प्रयोग न करें जब कि दूसरी खरपतवारनाशक दवाइयां इस खरपतवार को मारती हैं। अगर आलू की फसल के बाद कद्दू जाति वाली फसल की बिजाई करनी है तो आलू की फसल में स्टॉम्प या ग्रैमोक्सोन का ही प्रयोग करें। गोल दवाई का आलू की फसल में दुष्प्रभाव पड़ता है अत: इसका इस्तेमाल आलू में न करें।

टमाटर : टमाटर की फसल हरियाणा प्रदेश में ज़्यादातर अक्तूबर–नवम्बर महीने में लगाई जाती है। इस फसल में भी गर्मी, सर्दी व पतझड़ व बहार ऋतु वाले खरपतवार पाये जाते हैं। ज़्यादातर टमाटर की काश्त करनाल, कुरूक्षेत्र व मेवात के इलाकों में की जाती है। मेवात व दादरी (भिवानी) इलाकों में एक नया परजीवी खरपतवार (मरगोज़ा) जिसे गुल्ला, मरगोज़ी आदि नाम से जाना जाता है वह इस फसल में काफी नुकसान करता है। टमाटर में साधारणतया दो निराई गुड़ाई की आवश्यकता पड़ती है। पहली पौध रोपण के लगभग 20–25 दिन बाद व दूसरी पौध रोपण के 40–45 दिन बाद। इसी समय मिट्टी चढ़ाने का भी काम करना चाहिए। टमाटर की फसल में रासायनिक खरपतवार नियन्त्रण भी सम्भव है। इस के लिए स्टॉम्प 30 ई.सी. (पैंडीमिथालीन) नामक दवाई की 1.3 लीटर मात्रा 250 लीटर पानी में मिला कर प्रति एकड़ के हिसाब से पौध रोपण के लगभग 4–5 दिन बाद छिड़कें। स्टॉम्प या 300 ग्राम सैकोंर/एकड़ को 200 लीटर पानी में घोल कर, खेत तैयार करने के बाद टमाटर की पनीरी लगाने से 3–4 दिन पहले छिड़काव कर सकते हैं। इसके खेत को तैयार करके पनीरी लगानी चाहिए। अगर टमाटर में मरगोज़ा का प्रकोप हो तो रोपाई के 45 व 90 दिन बाद लीडर (सल्फोसल्फयूरान) की 66 ग्राम मात्रा/एकड़ या सनराईस 100 ग्राम मात्रा/एकड़ 150 लीटर पानी में मिलाकर दो बार छिड़काव करें।

फूलगोभी व पत्ता गोभी : ये फसलें हरियाणा प्रान्त में जून से अप्रैल तक उगाई जाती हैं। अगेती फसल में सांठी (ईटसिट), मकड़ा, मधाना, कोंधरा, चौलाई व मोथा आदि ज़्यादा उगते हैं जबकि सर्दी ऋतु की जो मुख्य फसल है में मेथा, बायु, घुई, खड़बायु, मैणा, जंगली पालक व कई बार कनकी (गुल्लीडण्डा) भी उग जाता है। इस फसलों में खरपतवार नियंत्रण हेतु स्टॉम्प 30 ई.सी. 1.3 लीटर या बासालिन 45% 1.0–1.3 लीटर या लासो 50 प्रतिशत 2.5 लीटर प्रति एकड़ प्रयोग करें। बासालिन का छिड़काव गोभी लगाने से पहले करना चाहिए। अगर खरपतवारनाशक का छिड़काव करने के 7–8 सप्ताह बाद खरपतवार उग जायें तो एक गुड़ाई करना बहुत ज़रूरी है। इन दवाइयों का गोभी की उगी हुई पनीरी पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। अगर बाद में गुल्लीडण्डा या जंगली जई का जमाव हो जाये तो क्लोडीनाफोप नामक रसायन की 160 ग्राम मात्रा का प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें।

गाजर : हरियाणा प्रान्त में गाजर की काश्त सितम्बर से नवम्बर माह तक प्रदेश के सभी इलाकों में की जाती है। सितम्बर में बोई गई फसल में गर्मी वाले खरपतवार सांठी, मकड़ा, कोंधरा, चौलाई व मोथा ज़्यादा उगते हैं। अक्तूबर–नवम्बर में बीजी गई फसल में बाथु, खडबाथु, मैथा, मैणा, कृष्णनील, जंगलीपालक व कनकी खरपतवार ज़्यादा पाये जाते हैं। गाजर की फसल थोड़ा धीरे बढ़ने की वजह से भी खास कर सांठी जैसे खरपतवार इसे शुरू में ही ढक लेते हैं। इसलिए बिजाई से पहले या तुरन्त बाद में खरपतवारनाशक का छिड़काव करने से काफी फायदा होता है। प्रयोगों द्वारा पाया गया है कि बिजाई करने के बाद हल्का पानी लगा दें व जब खेत बत्तर आ जाये तो गीले बत्तर में स्टॉम्प 30 ई.सी. की 1.3 लीटर मात्रा या गोल 23.5 ई.सी. की 150–200 मि.ली. मात्रा प्रति एकड़ का छिड़काव करने से बिजाई के 50 दिन तक 80 प्रतिशत खरपतवारों का नियंत्रण मिलता है। अगर उक्त खरपतवारनाशक का प्रयोग न करें तो ट्रैफलान 48 ई.सी. की 800–1000 मि.ली. मात्रा/एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर बिजाई से पहले छिड़काव करें और अच्छी तरह मिट्टी में मिला दें।

मूली शलगम में भी उपरोक्त तरीके से ही छिड़काव करें। तर्जुबों द्वारा सिद्ध हुआ कि खरपतवार नियंत्रण हेतु गोल, स्टाम्प व ट्रैफलान दवाइयां जब गाजर कट जाती है तो उसमें इनके अंश नहीं पाये जाते।

मटर : इस फसल में सर्दी वाले खरपतवार जैसे कि बायु, खड़बायु, मैणा, मैणी, कृष्णनील, जंगली पालक, लोम्बड़घास, पोआ, जंगली जई व गुल्लीडण्डा इत्यादि पाये जाते हैं। अगर मटर की फसल धान के बाद उगाई जाती है तो फसल में गुल्ली डण्डे का प्रकोप ज़्यादा होता है। मटर की फसल में बिजाई के बाद (2–3 दिन के अन्दर–अन्दर) तर बत्तर ज़मीन पर 1.3–1.7 लीटर स्टॉम्प 30 ई.सी. प्रति एकड़ के हिसाब से 200–250 लीटर पानी में मिला कर छिड़काव करें। प्रयोगों से पता चला है कि इमे–जेथापायर 10 ई.सी. की 250 मि.लीटर मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई के 45–50 दिन बाद प्रयोग उगे हुए खरपतवारों पर काफी प्रभावी है। अगर फसल कमज़ोर है तो 6–7 सप्ताह पर एक गुड़ाई ज़रूर कर दें। अगर मटर में गुल्लीडण्डा, जंगली जई व लोम्बड़ घास उग जायें तो एक्सियल 5 ई.सी. नामक खरपतवारनाशक की 400 मि.लीटर मात्रा प्रति एकड़ का पहले पानी के बाद उगे हुए खरपतवारों पर छिड़काव करना चाहिए। मटर की काश्त ज़्यादातर देसी खाद डाल कर की जाती है इस लिए इस फसल में मालवा (चौड़ी पत्ती वाला खरपतवार) की समस्या भी देखने को मिलती है। इन हालात में मटर की निराई गुड़ाई ही करें।

अमरूद के प्रमुख कीट एवं उनका समन्वित प्रबन्धन

✍ सुरेन्द्र सिंह यादव, सुनीता यादव एवं मनदीप राठी
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अमरूद अपनी व्यापक उपलब्धता, भीनी सुगंध एवं उच्च पोषक तत्वों के कारण गरीबों का सेब कहलाता है। भारत में आम, केला तथा नींबू वर्गीय फसल के बाद अमरूद चौथी मुख्य फसल है। इसका फल मीठा, मधुर, सुगन्ध वाला, पाचक एवं स्वादिष्ट होने के साथ विटामिन 'सी' विटामिन 'ए' एवं ल्यूकोपिन से भरपूर होता है। इसके फलों को ताज़ा खाने के अलावा जैम, जैली एवं स्वादिष्ट पेय बनाने में भी प्रयोग किया जाता है। अमरूद बहुत कम देखभाल से भी असानी से उगाया जा सकता है परन्तु अमरूद के सफल उत्पादन में कीट एक प्रमुख रुकावट हैं। अगर किसान अमरूद में लगने वाले कीटों की पहचान सही समय पर करके, उनका सही समय पर नियन्त्रण करें तो उत्पादन को काफी हद तक बढ़ाया जा सकता है। अमरूद में लगने वाले विभिन्न कीटों में फल मक्खी, तना बेधक कीट, छाल भक्षक इल्ली तथा स्केल कीट आदि प्रमुख हैं। अत: अमरूद की अच्छी उपज के लिए इन सभी कीटों की रोकथाम आवश्यक है। प्रस्तुत लेख में अमरूद में लगने वाले प्रमुख हानिकारक कीटों के बारे में विस्तृत जानकारी व नियंत्रण के उपाए दिये गए हैं :

1. **फल मक्खियां :** अमरूद के फलों पर जुलाई से सितम्बर के महीनों में इन मक्खियों का प्रकोप अधिक होता है। इसके प्रौढ़ घरेलू मक्खी के बराबर होते हैं और तेज़ उड़ते हैं। मादा मक्खी फलों में छेद करके छिलके के नीचे अण्डे देती हैं। जिन फलों पर अण्डे दिए जाते हैं, उन पर बहुत छोटे छिद्र (जो प्राय: गहरे हरे रंग के होते हैं) देखने को मिलते हैं। छोटे-छोटे जीवाणु छिद्रों से फलों में प्रवेश कर जाते हैं जिससे फल गलकर पकने से पूर्व गिर जाते हैं। अण्डों से बाद में सूण्डियां निकलती हैं, जोकि उबले हुए चावल के समान होती हैं और फल के गूदे को खाती हैं। क्षतिग्रस्त फलों में कीट की सूंडियां भरी रहती हैं। सूण्डियां 5 से 7 दिन में पूरी विकसित हो जाती हैं और प्यूपा बनने के लिए ज़मीन पर गिर जाती हैं। नवम्बर से मार्च तक यह कीट प्रौढ़ावस्था में शीतनिष्क्रिय रहता है।

रोकथाम :

- जहां तक सम्भव हो वर्षाकालीन फसल न लें क्योंकि इस समय फल-मक्खी द्वारा नुकसान अधिक होता है।
- पके हुए फलों को पेड़ पर न छोडें।
- ग्रसित फलों को प्रतिदिन इकट्ठा कर ज़मीन में 2 फुट गहरा दबा दें या भेड़-बकरियों को खिला दें।
- ग्रीष्मकाल में ज़मीन की खुदाई करें ताकि फल मक्खी के प्यूपा मर जायें।
- 500 मि.ली. मैलाथियान (सायथियान) 50 ई.सी. + 500 ग्राम गुड़ या चीनी को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड छिड़काव करें। अगर प्रकोप बना रहता है तो छिड़काव 7 से 10 दिन के अन्तर पर दोहराएं। दवाई छिड़कने के 5 दिन तक फलों को न तोड़ें।
- नर फल मक्खी को मिथाइल यूजोनिल नामक रसायन आकर्षित करते हैं। अत: इन्हें कीटनाशक के साथ मिलाकर कीटों को नष्ट किया जा सकता है। एक एकड़ क्षेत्र में 16 मिथाइल यूजोनिल ट्रैप पेड़ों पर 5 से 6 फीट ऊंचाई पर जुलाई के प्रथम सप्ताह से लगाएं। ट्रैप के मिश्रण को प्रति सप्ताह बदल दें। इसको कली से फल बनने के समय पर ही बगीचों में उचित दूरी पर लगा देना चाहिए।

2. **छाल खाने वाली सूण्डी :** अमरूद के साथ-साथ यह कीट प्राय: सभी फलदार, छायादार व अन्य पेड़ों को नुकसान पहुंचाता है। यह कीट प्राय: दिखाई नहीं देता परन्तु जहां पर टहनियां अलग होती हैं वहां पर इसका मल व लकड़ी का बुरादा जाले के रूप में दिखाई देता है। दिन के समय इस कीट की सूंडी तने के अन्दर सुरंग बनाती है एवं खुराक नली को खाकर नष्ट कर देती है, जिससे पौधों के दूसरे भागों में पोषक तत्व नहीं पहुंच पाते हैं। एक छिद्र में एक इल्ली या लट पायी जाती है। रात को यह सूंडी छेद से बाहर निकलकर रेशमी धागों के जाले से जुड़े हुए लकड़ी के टुकड़ों व अपने मल से बने रक्षक आवरण के नीचे रहकर छाल को खाती है। छोटे पौधे में प्रकोप होने से पौधा बीमार दिखाई देता है और बढ़वार रुक जाती है व बहुत तेज़ हवा चलने पर, प्रकोपित टहनियां एवं तने टूट कर गिर जाते हैं। एक वर्ष में इस कीट की एक ही पीढ़ी होती है जो जून-जुलाई से शुरू होती है।

रोकथाम :

- कटी-फटी छाल या ढीली छाल को हटा दें ताकि वयस्क अण्डे न दे पाएं और सूखी एवं ग्रसित शाखाओं को काटकर जला दें।
- बाग को साफ-सुथरा रखें व निर्धारित संख्या से ज़्यादा पेड़ न लगाएं।
- जाले हटाने के बाद निम्नलिखित कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग करें:

  सितम्बर-अक्तूबर में 10 मि.ली मोनोक्रोटोफॉस (नुवाक्रान) 36 डब्ल्यू. एस.सी. को 10 लीटर पानी में मिलाकर, सुराखों के चारों ओर की छाल पर लगाएं।

  फरवरी मार्च में 10 मि.ली. फैनिट्रोथियान (फोलिथियान/सुमिथियान) 50 ई.सी को 10 लीटर पानी में मिला कर घोल बनाएं व रूई के फोहों को घोल में डुबोकर किसी धातु की तार की सहायता से कीड़ों के सुराख के अन्दर डाल दें एवं सुराख को गीली मिट्टी से ढक दें।

  अथवा

  10 प्रतिशत मिट्टी के तेल का इमल्शन (1 लीटर मिट्टी का तेल + 100 ग्राम साबुन + 9 लीटर पानी) भी लगा सकते हैं।
- कम छिद्र हों तो लोहे के तार से ही छिद्र में लट को मार दें। आसपास के सभी वृक्षों के सुराखों में भी इन दवाइयों का प्रयोग करें।

3. **मिली बग :** दिसम्बर-जनवरी में अधिक संख्या में मिली बग के छोट-छोटे अखरोट की तरह भूरे शिशु ज़मीन के अन्दर अंडों से निकल कर

वृक्षों पर चढ़ते हैं तथा पत्तियों की सतह पर जमा हो जाते हैं। विकसित शिशु और प्रौढ़ मादा, चपटे, मोटे एवं अंडाकार होते हैं तथा इनके शरीर के ऊपर सफेद रंग का मोम जैसा चूर्ण जमा होता है। नये फुटाव आने पर, फरवरी में ये पतली डालियों पर जमा हो जाते हैं। इस कीट की ऊपरी सतह मोम जैसी होती है, इस कारण इन पर रसायनों का असर बहुत धीरे-धीरे होता है। इस कीट के निम्फ तथा वयस्क दोनों ही कोमल शाखाओं (टहनियों), कोमल पत्तियों व पंखुड़ियों से चिपककर रस चूसते हैं, जिससे पौधा पीला पड़ने लगता है। पत्तियां मुरझाकर सूख जाती हैं। अधिक प्रकोप होने पर तो फूल भी कम आते हैं तथा उनसे फल भी कम बनते हैं। यह कीट एक लसलसा मीठा पदार्थ स्रावित करता है, जिससे कवक (फफूंद) का आक्रमण भी शुरू हो जाता है। इस कीट का प्रकोप फरवरी-मार्च तक पाया जाता है।

रोकथाम :

- बगीचों में साफ-सफाई का पूर्णतया ध्यान रखें। प्रमुख खरपतवारों एवं गाजर घास को उखाड़कर नष्ट कर दें।
- पेड़ के आसपास की जगह साफ रखें तथा सितम्बर तक वृक्षों के नीचे ज़मीन की मिट्टी को प्रतिमाह पलटते रहें, जिससे कीट के अण्डे सूर्य की गर्मी एवं परजीवी शत्रुओं द्वारा नष्ट हो सकें।
- पेड़ की टहनियों को ज़मीन से न छूने दें।
- दिसम्बर के मध्य में कीट के शिशुओं को वृक्षों पर चढ़ने से रोकने के लिए भूमि से 0.5-1 मीटर की ऊंचाई पर तने पर 25-30 सैं.मी. चौड़ी चिकनी अल्काथीन (250-400 गेज़ पॉलिथीन) की पट्टी लगाएं। शीट लगाने से पहले वृक्ष की ऊपरी पुरानी छाल 5 से 8 सैंमी. चौड़ी पट्टी के बराबर कुल्हाड़ी से काटकर छील लें। इस समतल स्थान के ऊपर 5 सैं.मी. चौड़ी तारकोल (लुक) की तह किसी लकड़ी से लगाकर तुरन्त शीट के निचले भाग को अंगुलियों से अच्छी तरह से दबा दें जिससे शीट और लुक के बीच कोई खाली जगह न रहे। लुक की सहायता से शीट का ऊपरी हिस्सा भी तने पर 2-3 जगह चिपका दें।
- बाग में अन्य फलों, फूलों व जंगली वृक्षों पर भी बैंड (पट्टी) लगाएं।
- अप्रैल व मई में वृक्षों से नीचे उतरती बैंडों में फंसी हुई या नीचे गिरी हुई मादाओं को बाल्टी में एकत्रित कर सूखी पत्तियों के साथ जला दें।
- अल्काथीन पट्टी के नीचे एकत्रित कीटों को मारने के लिए 300 मि. ली क्विनलफॉस (एकालक्स) 25 ई.सी. को 50 लीटर पानी में मिलाकर प्रति 50 वृक्षों पर मध्य-जनवरी और फिर मध्य-फरवरी में छिड़काव करें। पूर्ण विकसित वृक्ष के लिए लगभग एक लीटर घोल की आवश्यकता पड़ती है।

  पत्तों, टहनियों आदि पर एकत्रित कीटों को नष्ट करने के लिए 1.5 लीटर क्विनलफॉस (एकालक्स) 25 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

4. प्ररोह एवं फल बेधक : इस कीट की इल्लियां अमरूद के फल, कलियों एवं प्ररोहों को क्षति पहुँचाती हैं। अण्डों से निकलने के बाद यह फलों के गूदों, बीज, कलियों एवं प्ररोहों के मुलायम उत्तकों को खाकर क्षति पहुँचाती है। क्षति ग्रस्त फलों से ये अपना मल निकालती हैं, जिससे फलों में सड़न पैदा हो जाती है। क्षति ग्रस्त प्ररोह एवं कलियाँ भी मुरझाकर सूख जाती हैं। कभी-कभी फल भी पकने से पूर्व गिर जाते हैं।

रोकथाम :

- बाग के आसपास मौजूद खरपतवारों को नष्ट कर दें।
- पौधों के क्षतिग्रस्त भाग को इकट्ठा कर नष्ट कर दें।
- मैलाथियान 50 ई.सी. 1 मि.ली. प्रति लीटर का प्रथम छिड़काव फूल आते समय तथा अगला फल बनते समय करें।
- एक लाईट ट्रैप प्रति हैक्टेयर लगाएं।

5. अनार की तितली : इस कीट की लटें (लारवा) फल के अन्दर घुसकर गूदे को खाती हैं। गूदे के अलावा यह बीजों को भी खा जाती हैं। क्षति ग्रस्त फलों में बदबू आने लगती है व फल पकने से पूर्व ही गिर जाते हैं। लटों के घुसने के स्थान पर फल अन्दर की तरफ दबा हुआ मालूम पड़ता है।

रोकथाम:

- बगीचों को खरपतवार मुक्त रखें व ग्रसित फलों को इकट्ठा कर नष्ट कर दें।
- गर्मियों में खुदाई अथवा गुडाई कर दें ताकि प्यूपा बाहर आ जाएं और सूर्य की किरणों व पक्षियों द्वारा नष्ट किये जा सकें।
- अमरूद के बाग के आसपास अनार की खेती न करें।
- मैलाथियान 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से पहला छिड़काव फूल बनते समय तथा अगला फल बनते समय करें। फूल आने वाली अवस्था पर नीम उत्पाद का 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।

6. स्केल कीट : किसी-किसी क्षेत्र अथवा बाग में कई तरह के नालीदार (फ्ल्यूटिड) कंटीले एवं नरम स्केल कीट अमरूद के पेड़ पौधों को कभी-कभी अधिक हानि पहुंचाते हैं। ये कीट छोटे, गोल एवं पीले भूरे या हल्के भूरे रंग के होते हैं तथा सफेद मोम जैसे चूर्णी पदार्थ से ढके रहते हैं। अण्डों से तुरन्त बाद शिशु, मुलायम टहनियों और पत्तियों की निचली सतह पर चिपककर रस चूसते हैं। क्षतिग्रस्त वृक्षों का विकास रुक जाता है। ये कीट मीठा रस (मधुस्राव) भी छोड़ते हैं जिससे काली चींटियां आकर्षित होती हैं और फफूंदी भी लग जाती है। फरवरी-मार्च से अक्तूबर-नवम्बर तक यह कीट सक्रिय रहता है तथा प्रौढ़ के रूप में शीत-निष्क्रिय होता है।

रोकथाम :

- स्केल कीटों से क्षतिग्रस्त वृक्षों पर 1.5 लीटर क्विनलफॉस (एकालक्स) 25 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ मार्च और सितम्बर में छिड़कें।
- क्षतिग्रस्त टहनियों को काटकर जला दें।

फलवृक्षों की काट-छांट

✍ रणबीर सिंह सैनी, सुरेन्द्र सिंह[1] एवं मुकेश कुमार[2]
कृषि विज्ञान केन्द्र, मण्डकौला
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

फलदार पौधों में काट-छांट का विशेष महत्व है विशेषकर पतझड़ी पौधों, फलवृक्षों में। सदाबहार पौधों में पतझड़ी पौधों की तरह काट-छांट का कोई विशेष नियम नहीं है सिवाय कुछ फल वृक्षों के जैसे-बेर, लीची आदि। इन फलवृक्षों में काट-छांट कार्य सूखी, रोगग्रस्त, नीचे झुकी व ज़मीन को छूती हुई टहनियाँ/शाखाओं को काटने तक सीमित है। यह कार्य फलों की तोड़ाई के तुरन्त बाद या फिर बसन्त ऋतु में नई बढ़वार शुरू होने से पहले किया जाता है। टहनियों को मुख्य शाखा के समीप से काटा जाता है व इसका कोई भाग शेष नहीं छोड़ा जाता। एक इंच से बड़े सभी कटे हुए सिरों पर बोर्डो पेस्ट का लेप करना चाहिए ताकि कटे सिरों को गलने या फफूंदी आदि के आक्रमण से बचाया जा सके। सदाबहार फलवृक्षों में काट-छांट की सिफारिशें इस प्रकार हैं :

आम : आमतौर पर आम के पौधों को प्राकृतिक रूप से बढ़ने दिया जाता है तथा काट-छांट की भी विशेष आवश्यकता नहीं होती। केवल सूखी, बीमार या गुच्छा-मुच्छा रोग से प्रभावित शाखाओं/टहनियों को काटा जाता है।

लीची और लौकाट : इनमें भी सूखी और रोगग्रस्त टहनियों को निकाला जाता है। इसके अतिरिक्त पके हुए फलों को शाखाओं के कुछ भाग के साथ तोड़ा जाता है जो काट-छांट का कार्य करती हैं और नई बढ़वार को प्रोत्साहन देती हैं।

अमरूद : अमरूद के पेबन्द पौधों से बाद में लगाने के बाद पेबन्द जोड़ के नीचे से फुटाव निकलते हैं जिन्हें निरन्तर काटते रहना आवश्यक है। प्रथम 1-2 वर्ष तक मुख्य तने से निकलने वाली शाखाओं को बढ़ने दिया जाता है और दूसरे या तीसरे साल इन्हें काट दिया जाता है। इसके बाद 4-5 नई शाखाओं को उचित दूरी पर रखा जाता है तथा शेष सभी को काट दिया जाता है। तीसरे से चौथे वर्ष मुख्य तने पर निकलने वाली शाखाओं को काट दिया जाता है ताकि प्रकाश पौधे के अन्दर तक प्रवेश कर सके। चार से पांच वर्ष की आयु तक मुख्य शाखाओं से निकलने वाली टहनियों को काटा जाता है। इसके अतिरिक्त सभी सूखी व टूटी टहनियों को निरन्तर काटते रहना चाहिए। यदि पौधे अचानक पैदावार कम देने लगें तथा ऊपर से सूखने लगें तो सभी मुख्य शाखाओं को मुख्य तने से 75-100 सैं.मी. ऊपर से काट दिया जाता है। यह कार्य फरवरी-मार्च के दौरान करना चाहिए। इसके बाद इन्हें पर्याप्त खाद, उर्वरक व सिंचाई देनी चाहिए। ऐसा करने पर ये फिर भरपूर पैदावार देना आरम्भ कर देते हैं।

नींबूवर्गीय फल : नर्सरी अवस्था से ही मूलवृन्त से निकलने वाली सभी शाखाओं को काटते रहना चाहिए। आरम्भिक अवस्था में लगने वाले फलों को तोड़ते रहना चाहिए। पौधे जल्दी से विकसित हो सकें। बड़े नींबूवर्गीय फलवृक्षों को काट-छांट की विशेष आवश्यकता नहीं होती। केवल बारामासी नींबू और किन्नो को काट-छांट की आवश्यकता होती है। क्योंकि इन दोनों में अनेक पतली-पतली कमज़ोर टहनियाँ निकलती हैं जो कोई फल नहीं देती और फलित टहनियों के साथ दखलअन्दाज़ी करती हैं। पौधों के केन्द्र में शाखाओं की भीड़ हो जाती है जिससे नीचे की टहनियों को धूप नहीं मिलती। इन शाखाओं का एक-तिहाई से दो-तिहाई भाग काट देना चाहिए। इसके अतिरिक्त सूखी, रोगी, टूटी तथा ज़मीन को छूती शाखाओं को फल तोड़ने के बाद दिसम्बर-जनवरी में निकाल देना चाहिए।

इसी तरह अन्य सदाबहार पौधों में भी काट-छांट का कार्य सूखी, रोगी, झुकी हुई व एक-दूसरे में उलझी टहनियाँ निकालने तक सीमित होता है।

पतझड़ी फलवृक्षों में काट-छांट

बेर : बेर में प्रतिवर्ष अत्यधिक बढ़वार होती है और शाखाओं के कमज़ोर होने के कारण वे झुककर ज़मीन पर टिक जाती हैं। इसलिए पहले 2-3 वर्ष में 4-5 मुख्य शाखाएं उचित दूरी पर ज़मीन से 90-100 सैं.मी. ऊपर मुख्य तने के चारों ओर रखनी चाहिएं ताकि पौधों का एक मज़बूत ढांचा तैयार हो सके। नर्सरी में पेबन्द पौधों को सहारा देना चाहिए क्योंकि बेर के अधिकतर फल नई टहनियों पर पत्तों के बगल में लगते हैं इसलिए वार्षिक काट-छांट अति आवश्यक है। काट-छांट का उत्तम समय उत्तरी भारत में 15-30 मई तथा दक्षिणी भारत में फरवरी-मार्च है। चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल पर किए गये शोध कार्य से यह निष्कर्ष निकला है कि बेर की एक वर्ष पुरानी टहनियों/शाखाओं को 6 द्वितीय के बाद काट देना चाहिए। इसके अतिरिक्त जहाँ कहीं भी शाखाओं की भीड़ हो तो कुछ शाखाओं को पूरी तरी तरह निकाल देना चाहिए।

फालसा : फालसा में ज़मीन की सतह से ही अनेक तने निकलते हैं और सभी फल देते हैं क्योंकि नई शाखाएं ही फल देती हैं अत: वार्षिक काट-छांट अनिवार्य है। फालसा में काट-छांट का उत्तम समय 15 दिसम्बर से 15 जनवरी है। फालसा की बौनी किस्म की कटाई ज़मीन से 30-40 सैं.मी. ऊपर से आधा काट देना चाहिए। इसके साथ-साथ 30-40 प्रतिशत शाखाओं को पूरी तरह निकाल दिया जाता है।

नाशपाती : आमतौर पर नाशपाती के पेड़ों की सिधाई मोडिफाईड लीडर विधि से की जाती है। इस विधि में सैन्ट्रल लीडर को 90-120 सैं.मी. की ऊँचाई पर काट दिया जाता है। द्वितीय वर्ष में पेड़ के केन्द्र से निकलने वाली सबसे बड़ी शाखा को रख लिया जाता है और इसके अतिरिक्त पेड़ के चारों ओर 10-15 सैं.मी. की दूरी पर 4-5 पार्श्व शाखाएं रखी जाती हैं। द्वितीय वर्ष में रखी गई पार्श्व शाखाओं से तृतीय व चतुर्थ वर्ष में और पार्श्व शाखाएं निकलेंगी जिनमें से दो को रखकर शेष सभी को

[1]सहायक निदेशक (बागवानी), विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।
[2]सहायक वैज्ञानिक (बागवानी), क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल

निकाल दिया जाता है। इस प्रकार तृतीय व चतुर्थ वर्ष में निकलने वाली पार्श्व शाखाएं द्वितीय शाखाएं कहलाएंगी। पाँचवें वर्ष की काट-छांट के समय सैंट्रल लीडर को बाहर की तरह बढ़वार प्रेरित करते हुए काट दिया जाता है।

फलित पौधों की काट-छांट

नाशपाती के फल छोटी-छोटी टहनियों पर लगते हैं जिन्हें स्पर कहते हैं। ये बहुत धीरे-धीरे बढ़ते हैं व परिपक्व होने में 2-5 वर्ष लेते हैं व 10-15 वर्ष तक फल देते हैं। अत: पहले 10-15 वर्ष पौधों को अधिक काट-छांट की आवश्कता नहीं होती। कमज़ोर, रोगी व एक-दूसरे में फँसी हुई शाखाओं को निरन्तर निकालते रहना चाहिए। पुराने वृक्षों को नवीकरण तथा अधिकतम फलित शाखाएं प्राप्त करने के लिए अधिक काट-छांट की ज़रूरत पड़ती है। इसके लिए बड़ी-बड़ी शाखाएं पूरी तरह निकाल दी जाती हैं जिससे सूर्य की रोशनी वृक्ष के केन्द्र में भी प्रवेश करती है और साथ ही नये स्पर भी निकलते हैं जो फिर 10-15 वर्ष तक फल देते हैं। काट-छांट व फल तोड़ते समय स्पर को नुकसान नहीं होना चाहिए। नाशपाती की काट-छांट का उत्तम समय फरवरी माह है।

आड़ू : आड़ू की सिधाई भी मोडिफाइड लीडर विधि से की जाती है जिससे सेन्ट्रल लीडर को करीब 1 मीटर की ऊँचाई पर काट दिया जाता है। साथ-साथ सभी शाखाएं भी काट दी जाती हैं। यह कार्य खेत में पौधे लगाते समय ही कर देना चाहिए। इसके बाद केवल 4-5 शाखाएं जो पेड़ के चारों ओर उचित दूरी पर रखी जाती हैं, शेष सभी शाखाओं को निकाल दिया जाता है। सबसे नीचे वाली शाखा ज़मीन से कम से कम 40-50 सैं.मी. ऊपर होनी चाहिए। द्वितीय वर्ष में सेंट्रल लीडर को बढ़ने दिया जाता है तथा पार्श्व शाखाओं की अत्यधिक संख्या को कम कर दिया जाता है। तृतीय वर्ष में सेन्ट्रल लीडर को पार्श्व शाखा के रूप में फिर काट दिया जाता है। आड़ू के फल एक वर्ष पुरानी शाखाओं पर लगते हैं। अत: वार्षिक काट-छांट अति अनिवार्य है। आड़ू की काट-छांट का उत्तम समय 25 दिसम्बर से 15 जनवरी है। एक वर्ष पुरानी शाखाओं में से 40 प्रतिशत को पूरी तरह निकाल दिया जाता है व शेष सभी शाखाओं का 30-40 प्रतिशत भाग काट दिया जाता है।

आलुबुखारा : आलुबुखारा की सिधाई भी आड़ू की तरह ही की जाती है। सेन्ट्रल लीडर को पौधे खेत में लगते समय ही ज़मीन से एक मीटर ऊपर काट दिया जाता है। द्वितीय वर्ष की काट-छांट के समय अनेक पार्श्व शाखाओं में से केवल चार शाखाएं रखकर शेष सभी को काट दिया जाता है ताकि पौधों का उचित ढ़ांचा तैयार हो जाये। तृतीय एवं चतुर्थ वर्ष में पार्श्व शाखाओं को सन्तुलित अनुपात में रखा जाता है और अनचाही शाखाओं को निकाल देना चाहिए। पाँचवे वर्ष में सेंट्रल लीडर को उचित स्थान से एक पार्श्व शाखा केक रूप में काट देना चाहिए। आड़ू की भांति आलुबुखारा भी एक वर्ष पुरानी शाखाओं व स्पर पर फल देता है। अत: जनवरी मास में प्रतिवर्ष हल्की कटाई करनी चाहिए। कमज़ोर, सूखी, रोगग्रस्त व एक दूसरे में फँसी सभी शाखाएं निकाल देनी चाहिएं। मुख्य तने से निकलने वाली सभी शाखाएं निरन्तर काटते रहना आवश्यक है।

फलदार पौधों की काट-छांट के समय सावधानियां

1. फलवृक्षों की काट-छांट केवल तेज़ धारदार/दांतेदार सकेटियर अथवा आरी से ही करनी चाहिए
2. फल वृक्षों में काट-छांट का कार्य सही समय पर करना चाहिए।
3. प्रत्येक फलवृक्ष की काट-छांट की तीव्रता का आवश्यकतानुसार विशेष ध्यान रखना चाहिए।
4. काट-छांट साफ होनी चाहिए व शाखाओं का छिलका नहीं उतरना चाहिए।
5. 2.5 सैं.मी. से मोटे सभी कटे सिरों को 2 किलोग्राम कॉपर सल्फेट, 3 किलोग्राम चूना, 15 लीटर पानी (बोर्डो मिश्रण) की पेस्ट से पोताई कर देनी चाहिए।

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951(ई) के तहत एक सूचना जारी की है कि 12 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स+फंजीसाइड्स+ हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 8 अगस्त 2018 से ही बन्द कर दिया जाए। छ: कीटनाशकों का प्रयोग 31 दिसम्बर, 2018 से बन्द कर दिया जाए। इनकी सूची इस प्रकार है :

8 अगस्त, 2018 से प्रतिबंधित कीटनाशक

1. **बेनोमाईल** (Benomyl)
2. **कार्बाराइल** (Carbaryl)
3. **डाय जिनॉन** (Diazinon)
4. **फेनारिमोल** (Fenarimol)
5. **फेन्थियॉन** (Fenthion)
6. **लिन्यूरॉन** (Linuron)
7. **मैथॉक्सी इथाइल मरकरी क्लोराइड** (Methoxy Ethyl Mercury Chloride)
8. **मिथाइल पैराथियॉन** (Methyl Parathion)
9. **सोडियम सायनाइड** (Sodium Cyanide)
10. **थियोमेटॉन** (Thiometon)
11. **ट्रायडमॉर्फ** (Tridemorph)
12. **ट्राइफ्लूरालिन** (Trifluralin)

31 दिसम्बर, 2020 से प्रतिबंधित होने वाले कीटनाशक

1. **एलाक्लोर** (Alachlor)
2. **डाइक्लोर्वास** (Dichlorvos)
3. **फोरेट** (Phorate)
4. **फास्फोमिडान** (Phosphamidon)
5. **ट्राइज़ोफॉस** (Triazophos)
6. **ट्राइक्लोर्फोन** (Trichlorfon)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

रबी की तिलहनी फसलों में सल्फर का महत्व

✍ मुकेश कुमार जाट, प्रमोद कुमार यादव एवं रामस्वरूप दादरवाल
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

फसलों को उपयुक्त बढ़वार व पैदावार के लिए मुख्यत: 17 तत्वों की कम या ज़्यादा रूप से आवश्यकता होती है। उन सभी आवश्यक पोषक तत्वों में सल्फर तत्व का एक महत्वपर्ण स्थान है तथा इसका स्थान द्वितीय पोषक तत्वों में सबसे पहले है। सल्फर मृदा में जिप्सम, पायराइट्स आदि खनिजों के रूप में पाया जाता है। मृदा में कुल सल्फर की औसत मात्रा 0.01–0.1 प्रतिशत होती है। वर्तमान समय में किसान अधिकतम उत्पादन हेतु पौधों को अधिकाधिक उर्वरक देने का प्रयास कर रहा है। प्रमुख उर्वरक यूरिया तथा डायअमोनियम फास्फेट में सल्फर नहीं होने से तथा कार्बनिक खादों के सीमित प्रयोग से मृदा में द्वितीय तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होती जा रही है। उसमें सल्फर की कमी एक वास्तविक समस्या है। तेल वाली फसलों जैसे सरसों, तारामीरा, सूरजमुखी व मूंगफली आदि के लिए संतुलित उर्वरक का प्रयोग आवश्यक है क्योंकि सल्फर तेलवाली फसलों में तेल की मात्रा व गुणवत्ता को बढ़ाने के साथ-साथ पौधों में रोग प्रतिरोधकता भी बढ़ाता है। अत: टिकाऊ तथा अधिक उत्पादन के लिए सल्फर तत्व की आपूर्ति आवश्यक है।

सल्फर का महत्व :

सल्फर कुछ महत्वपूर्ण ऐमिनो अम्लों–सिस्टाइन, सिस्टीन, मिथियोनीन तथा प्रोटीन संश्लेषण में आवश्यक होता है। प्रोटीन में पादप ऊतकों का अधिकांश नाइट्रोजन और सल्फर सन्निहित रहता है। पौधों में नाइट्रोजन और सल्फर एक निश्चित अनुपात में पाये जाते हैं। पौधों में आमतौर पर नाइट्रोजन की 1.5 प्रतिशत तथा सल्फर की 0.1 प्रतिशत मात्रा होती है। सल्फर क्लोरोफिल के निर्माण में भी सहायता करता है। सल्फर प्राय: तेल वाली फसलों में उत्पादकता और रोग प्रतिरोधकता को बढ़ाने में सहायता करती है।

सल्फर की कमी के लक्षण :

1. इसकी कमी के लक्षण सबसे पहले पुरानी पत्तियों में दिखाई देते हैं और धीरे-धीरे नयी पत्तियों पर भी इसका प्रभाव बढ़ता जाता है।
2. पौधों की ऊपरी पत्तियों का रंग हल्का पीला व आकार छोटा हो जाता है। पत्तियों का रंग तो हरा रहता है परन्तु बीच का शिरा पीला हो जाता है।
3. सरसों में या अन्य तेल वाली फसलों में इसकी कमी से नई पत्तियां प्यालेनुमा हो जाती हैं तथा पत्तियों का निचला भाग लालिमा लिये दिखाई देता है।
4. फसल की गुणवत्ता में भी कमी आ जाती है।
5. तेल वाली फसलों में तेल की गुणवत्ता कम हो जाती है।
6. तेल वाली फसलों में पत्तियों के पीलेपन की वजह से भोजन पूरा नहीं बना पाती हैं और उत्पादन में कमी आने से तेल का प्रतिशत कम हो जाता है।

सल्फर की कमी के कारण :

1. तेलवाली फसलों में बुवाई से पूर्व खेत में उचित मात्रा में कार्बनिक/जैविक खादों का प्रयोग न करना ।
2. भूमि में संतुलित उर्वरकों का प्रयोग न करना।
3. लगातार विभिन्न फसलों द्वारा सल्फर ज़मीन से लेते रहना व सल्फर रहित उर्वरकों का प्रयोग करना।
4. निक्षालन द्वारा सल्फर की कमी हो जाती है।
5. यूरिया तथा डी.ए.पी. के बढ़ते उपयोग ने अमोनियम सल्फेट तथा सुपर फास्फेट के उपयोग को बाधित किया है जो कि गंधकयुक्त उर्वरक है।
6. उच्च उत्पादन देने वाली किस्मों के आगमन से पूर्व (1960 से पूर्व) मृदा में इसकी कमी नहीं थी लेकिन अधिक उत्पादन के साथ सल्फर के बढ़ते उपग्रहण से इसकी कमी परिलक्षित होने लगी है।

कमी को सुधारना :

प्राय: तात्विक सल्फर क्षारीय मृदा को सुधारने के लिए प्रयोग की जाती है। मृदा में मिलाने पर यह कैल्शियम मैग्नेशियम आदि के सल्फेट में परिवर्तित हो जाती है। जिप्सम में 18 प्रतिशत सल्फर होती है। यह कैल्शियम तथा सल्फर प्रदान करता है। मृदा में सल्फर उर्वरक के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। सल्फर उर्वरकों जैसे अमोनियम सल्फेट, जिप्सम, सुपर फास्फेट, पोटेशियम सल्फेट, अमोनियम सल्फेट, नाईट्रेट द्वारा मृदा में मिलाया जाता है। इन उर्वरकों तथा खाद्यों के प्रयोग से मृदा में सल्फर की कमी दूर की जा सकती है।

उपयोग कब करें :

1. सामान्यरूप से तात्विक सल्फर का प्रयोग बुवाई से 21 दिन पूर्व नम मृदा में किया जाना चाहिए।
2. जिप्सम द्वारा पूर्ति करने पर इसका उपयोग बुवाई के समय भी किया जा सकता है, आवश्यक होने पर खड़ी फसल में भी किया जा सकता है।

सल्फर के स्रोत :

1. सुपर फास्फेट तथा जिप्सम सर्वाधिक उपयुक्त पाये जाते हैं।
2. तात्विक गंधक, पायराइट एवं अमोनिया सल्फेट भी प्रयोग किये जा सकते हैं।

सल्फर की मात्रा का निर्धारण :

1. खड़ी फसल में इसका निदान प्रकट होने वाले लक्षणों को देखकर किया जाता है। तेल वाली फसलों में अत्यधिक न्यूनता में 40, न्यूनता में 30 एवं मध्यम मृदा में 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर का प्रयोग लाभकारी है।

(शेष पृष्ठ 22 पर)

मृदा को स्वस्थ रखने के विकल्प एवं प्रबंधन

✍ पूजा रानी, नरेंदर कुमार एवं विकास कुमार
कृषि विज्ञान केंद्र, सदलपुर
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बीसवीं सदी की हरित क्रांति ने भारत में खाद्यानों का उत्पादन बढ़ाने में उल्लेखनीय योगदान दिया। उन्नत किस्में, उन्नत सस्य क्रियाएं, रासायनिक उर्वरक व पौध सुरक्षा के लिए रसायनों के उपयोग से प्रांरभ में फसल उत्पादन में तेज़ी से बढ़ोत्तरी हुई। परंतु विगत कुछ दशकों से उत्पादन एक स्तर पर रुक गया है तथा इसकी आगामी बढ़ोत्तरी होना मुश्किल है। इस रुके हुए उत्पादन स्तर का प्रमुख कारण रसायनों के अंधाधुंध उपयोग से मृदा की गुणवत्ता में आई गिरावट है।

मृदा एक जीवित निकाय है जिसके प्रभाषित जैविक, रासायनिक व भौतिक गुण धर्म होते हैं इस में से किसी भी एक गुण धर्म में हुआ परिर्वतन मृदा की उपजाऊ शक्ति को प्रभावित करता है। रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध उपयोग, लवणीय व क्षारीय पानी द्वारा सिंचाई व उद्योगों अथवा सीवरेज अपशिष्टों का खेतों में समावेश जैसे मुख्य कारक हैं जो मृदा के मूलभूत गुणों को परिवर्तित कर देते हैं तथा उपजाऊ क्षमता को क्षीण कर देते हैं। इसी के साथ किसानों द्वारा रासायनिक उर्वरकों को जैविक खादों पर प्रधानता देने से मृदा में उपस्थित लाभदायक सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या में भारी कमी आ गई है। उपरोक्त सभी कारणों से हरियाणा प्रदेश की मिट्टी अस्वस्थ श्रेणी में आ गई है।

मृदा स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक

1. औद्योगीकरण एवं शहरीकरण
2. कृषि रसायनों का अनियंत्रित उपयोग
3. सिंचाई के साधनों का अवैज्ञानिक प्रयोग
4. सघन खेती
5. जैविक खादों का अनुप्रयोग
6. रासायनिक उर्वरकों का असंतुलित मात्रा में प्रयोग

मृदा स्वास्थ्य में क्षरण से होने वाले दुष्प्रभाव

- मनुष्यों व जानवरों के स्वास्थ्य में गिरावट
- भूमिगत व सतहीजल की गुणवत्ता में नुकसान कारक बदलाव
- खाद्य शृखंला में विषाक्त तत्वों का प्रवेश
- फसल उत्पदान और उत्पादकता में गिरावट
- मृदा जैव विविधता में कमी

खेत की मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ (जैवकार्बन) मृदा के स्वस्थ होने के सूचक होते हैं। परंतु कृषि के रसायनों का अंधाधुंध प्रयोग, जैविक खादों की अनदेखी, अवैज्ञानिक तरीके से सिंचाई, एक ही रासायनिक उर्वरक का लगातार प्रयोग आदि कई कारण हैं जिसकी वजह से मृदा स्वास्थ्य बुरी तरह प्रभावित हुआ है।

मृदा को स्वस्थ रखने के विकल्प एवं प्रबंधन कार्यनीति

समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन : किसानों को एक ऐसी पादप पोषण व्यवस्था बनानी होगी जिस में पोषक तत्वों की उपलब्धता के लिए प्राकृतिक कार्बनिक पदार्थ, जैविक एवं कृत्रिम रूप से संश्लेषित रासायनिक स्त्रोतों का समुचित और संतुलित समन्वय किया जा सके। मृदा स्वास्थ्य एवं बढ़ती आबादी के भरण पोषण दोनों तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इन तीनों स्त्रोतों का उचित अनुपात में उपयोग अनिवार्य है। प्राकृतिक खादों से पौधों को पोषक तत्व के साथ मृदा में भी कार्बन उपलब्ध होता है जो सूक्ष्म जीवों के लिए ऊर्जा का स्त्रोत है। जैव उर्वरक या जीवाणु खाद जीवित उर्वरक हैं जिस में वांछित सूक्ष्म जीव विद्यमान होते हैं जो प्राकृतिक रूप से पौधों का पोषण करते हैं।

जीवाणु खाद के प्रकार :

1. **नाइट्रोजन यौगिकी करण करने वाले :** राइजोबियम (दलहनी फसलों में) एजोटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलम, एसीटोबैक्टर आदि (अनाज वाली फसलें)
2. **फास्फोरस घलनशीलता के लिए :** स्यूडोमोनास, एसर्पजिलस, पैनिसिलियम, बैसिलस आदि।
3. **पोटाश घुलनशीलता के लिए :** बेसिलस, एसीटोबैक्टर

इन्हीं दोनों स्त्रोतों के साथ-साथ रासायनिक उर्वरक आज भी पोषक तत्वों के मुख्य स्त्रोत हैं तथा बढ़ती आबादी को ध्यान में रखते हुए इनका दूसरा विकल्प भी नहीं है। अत: रासायनिक उर्वरकों का संतुलित व वैज्ञानिक तरीके से उपयोग भी समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन प्रणाली का अहम घटक है। समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य सही समय पर पोषक तत्वों को सही मात्रा में प्रदान करना है और साथ ही साथ कृषि लागत में उल्लेखनीय कमी लाना तथा मृदा स्वास्थ्य बनाए रखना है जिससे फसल उत्पादन ज़्यादा लाभकारी व टिकाऊ बन सके।

समन्वित कीट व खरपतवार प्रबंधन :

यह एक ऐसी व्यवस्था है जिससे कृषि से संबन्धित, विभिन्न परिस्थितियों तथा पर्यावरण के साथ सांमजस्य बनाते हुए नुकसानदायक कीटों, रोगों व खरपतवारों के नियंत्रण की तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। इस व्यवस्था में रसायनों पर निर्भरता कम करने पर बल दिया जाता है जिस के कारण पर्यावरण भी सुरक्षित रह सके तथा मृदा में रहने वाले सूक्ष्म जीवों का भी अस्तित्व कायम रहे।

सिंचाई व्यवस्था व पानी की गुणवत्ता :

हरियाणा में मुख्य तौर पर सतही सिंचाई पद्धतियां प्रचलित हैं जो कम प्रभावशाली व मृदा की उर्वरता के लिए नुकसान देह है। हल्की मिट्टी में टपका या फव्वारा विधियों को अपना कर पोषक तत्वों की लिचिंग होने से बचा जा सकता है। सिंचाई के पानी की गुणवत्ता भी मृदा स्वास्थ्य पर बुरा असर डालती है। अधिक लवणीय व क्षारीय पानी देने से मृदा में अवांछित तत्वों

(शेष पृष्ठ 22 पर)

अप्रैल मास के कृषि कार्य

फसलों में

गेहूं और जौ

गेहूं की बालों का रंग जब सुनहरा या ललाई लिए हो तो फसल को पकी समझें। ज़्यादा पकने से दाने झडने का डर रहता है। खेत में खड़े खरपतवार, सामान्यत: कनकी (मंडूसी), जंगली जई की कटाई पकने से 10–15 दिन पहले सावधानी से करके मुख्य फसल से अलग कर लें। इन फसलों की गहाई अच्छी तरह सूखने पर ही करें।

जिन खेतों में पत्तों पर कांगियारी का प्रकोप रहा हो उन खेतों के बीज को अगले वर्ष बिजाई के लिए प्रयोग में बिल्कुल भी न लाएं तथा रोगग्रस्त पौधों को जलाकर नष्ट कर दें।

थ्रैशर मशीन

थ्रैशर मशीन को समतल ज़मीन पर ही स्थापित करें ताकि चलते समय कम से कम कम्पन हो। मशीन को चलाने से पहले हाथ द्वारा एक चक्कर लगा कर देख लें कि कहीं रुकावट तो नहीं है। थ्रैशर मशीन के पहियों को ज़मीन में गाड़ कर खूंटियां लगा दें और आवश्यकता हो तो फ्रेम पर भार/वज़न आदि रखें। भूसे की निकासी हवा चलने की दिशा की ओर हो। थ्रैशर को सही चक्करों पर ही चलाएं। थ्रैशर सिलेंडर उसी दिशा में घूमना चाहिए जैसा कि निशान द्वारा दर्शाया गया हो वरना पट्टे क्रॉस करके इसकी दिशा ठीक करनी चाहिए ताकि थ्रैशर सही चक्करों पर ही चले।

घटिया किस्म का थ्रैशर कभी भी प्रयोग न करें। थके होने पर थ्रैशर पर काम न करें। नशे की हालत में भी थ्रैशर न चलाएं। खलिहान में हुक्का व बीड़ी–सिगरेट कदापि न पिएं। काम करते समय ढीले–ढाले कपड़े न पहनें। मंद रोशनी में काम न करें। रात को काम करते समय रोशनी का प्रबन्ध रखें। गीली फसल की गहाई न करें। ट्रैक्टर के धुआं निकलने वाली पाइप के ऊपर चिंगारी अवरोधक अवश्य लगाएं। बिजली के खंबों व तारों के नीचे कभी भी फसल का ढेर न रखें। कुछ पानी और रेत थ्रैशर के पास रखें ताकि आग लगने पर काबू पाया जा सके।

लेखक :

- अश्विनी कुमार, सह–निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
- एच. एस. सहारण, सह–निदेशक (पादप रोग विज्ञान)
- वी. एस. हुड्डा, सहायक वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
- वी. के. बत्तरा (सब्जी विज्ञान)
- सरिता, विस्तार विशेषज्ञ (लुवास)
- सूबे सिंह, विस्तार विशेषज्ञ (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

चना

जहां पर अंगमारी देखने में आई हो वहां रोगग्रस्त पौधों को जलाकर अवश्य नष्ट कर दें। टाँट वाली सूंडी से फसल को बचाने हेतु मार्च मास में बताए गए कीटनाशकों में से किसी एक का छिड़काव करें।

गन्ना

गन्ने की बिजाई के लगभग 40 दिन बाद पहला पानी लगाएं। बत्तर आने पर गुड़ाई करें। यदि बिजाई के समय एट्राजीन नहीं डाल पाये हों तो पहली सिंचाई के बाद गोड़ाई करके 1.6 किग्रा. एट्राजीन–50 घु.पा. प्रति एकड़ की दर से 200–250 लीटर पानी में घोलकर खड़ी फसल में छिड़काव करें। इससे गन्ना फसल पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। अन्त: फसलीकरण में इस शाकनाशक का प्रयोग न करें। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का नियन्त्रण करने के लिए 1.0 किग्रा. 2, 4–डी (80 प्रतिशत सोडियम नमक) 250 लीटर पानी में बिजाई के 7–8 सप्ताह बाद प्रति एकड़ छिड़काव करें। यदि फसल में मोथा घास (डीला) की समस्या हो तो घास उगने पर 2, 4–डी ईस्टर का 400 मिली. प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। यदि मोथा घास दोबारा उग जाए तो दवाई की इसी मात्रा का फसल में छिड़काव करें। 2, 4–डी मोथा घास को ऊपर से ही नष्ट करती है। मोथा घास (डीला) की रोकथाम के लिए सैंम्प्रा (15 प्रतिशत हैलोसल्फ्युरान) का 36 ग्रा. प्रति एकड़ की दर से 200 लीटर पानी में घोलकर बिजाई के 35–45 दिन बाद (पहली सिंचाई के 2–3 दिन बाद) जब मोथा घास 3–5 दिन की हो तब फ्लैट फैन नोज़ल से छिड़काव करें। अन्त: फसलीकरण में इस शाकनाशक का प्रयोग न करें।

स्केल कीड़ा सोनीपत तथा फरीदाबाद ज़िलों के कुछ गांवों में गम्भीर रूप में आ गया है। इसके फैलाव को रोकने के लिए बीज ऐसी फसलों व क्षेत्रों से न लें जहां इस कीड़े का प्रकोप हो। कीड़ाग्रस्त क्षेत्रों से दूसरे क्षेत्र में गन्ना बिजाई के लिए नहीं ले जाना चाहिए। केवल स्वस्थ बीज बोएं एवं अच्छे जमाव के लिए बीज को 5–10 मिनट 250 ग्राम एमिसान या मैन्कोजेब दवा 100 लीटर पानी के घोल से उपचारित करें। काटने के बाद सभी पत्तियों व नए फुटाव को खेतों में नष्ट कर दें। कीटग्रस्त क्षेत्रों में एक से अधिक मोढ़ी फसलों में काली चींटी के नियंत्रण के लिए 400 मि.ली. क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. को 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। फरवरी व मार्च में बोई गन्ने की फसल में 45 किलोग्राम यूरिया खाद प्रति एकड़ डालें। गन्ने की मोढ़ी की फसल में अप्रैल के आखिर में 65 किलोग्राम यूरिया प्रति एकड़ डालें।

कपास

अच्छी उपज लेने के लिए कपास की सामान्य बिजाई अगले मास में करें परंतु भिवानी, महेन्द्रगढ़ व सिरसा जिलों के ऐसे क्षेत्रों, जहां रेतीली मिट्टी व रेतीले टिब्बे बनने की संभावना है, में कपास की बिजाई इस माह के

पहले पखवाड़े में कर दें। केवल उन्नत किस्में ही बोएं। बीकानेरी नरमा जैसी उन्नत किस्मों एच एस 6, एच 1098, एच 1117, एच 1226, एच 1098, एच 1236, एच 1300 व संकर किस्म एच एच एच 223 व एच एच एच 287 बोने की सिफारिश की जाती है। देसी कपास की बिजाई के लिए एच डी–107, एच डी 123, एच डी 324, एच डी–432 व संकर किस्म ए ए एच–1 बोएं। इसके अतिरिक्त केवल अनुमोदित की गई बी. टी. संकर किस्में ही लगाएं।

कपास से बढ़िया फुटाव के लिए पूरे खेत की तैयारी सही ढ़ंग से करनी ज़रूरी है। अत: खेत की तैयारी इस मास के अंत में शुरू करें। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए। इसके बाद आवश्यकतानुसार 3–4 जुताइयां करके खेत को अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिए। कपास की बिजाई के समय खेत में बत्तर का होना ज़रूरी है। इसके लिए खेत में अच्छा पलेवा करें। गीले बत्तर में दो जुताइयां करके सुहागा लगाएं व खेत को एकसार कर लें। खेत में पौधों की सही संख्या के लिए बीज की सही मात्रा प्रयोग में लाएं। बीज का उपचार करके ही बिजाई करें। एक एकड़ के लिए अमेरिकन कपास (नरमा) के लिए 6–8 किलोग्राम रोएं रहित बीज व 8–10 किग्रा. रोएंदार बीज पर्याप्त होता है। देसी कपास के लिए लगभग 5 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ डालें। ड्रिल द्वारा बीजने के लिए यदि रोएं उतारे बीज न मिलें तो 6 किलोग्राम प्रति एकड़ रोएंदार (साधारण) बीज को बोने से पहले बारीक मिट्टी, गोबर या राख में रगड़ लेना चाहिए जिससे ड्रिल में से बीज एकसार निकलें। बी. टी. संकर का 850 ग्राम बीज प्रति एकड़ प्रयोग करें। इसकी बिजाई कपास बीजने वाली एक खूड़ वाली ड्रिल से कतारों में करें। दो खूड़ों व पौधों का फासला लगभग 67.5–30 सैं.मी. रखें। ध्यान रहे कि बिजाई अच्छी नमी (आल) में की जाए व बीज 4–5 सैं.मी. की गहराई पर डालें। संकर कपास के लिए 1.2 से 1.5 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ 67.5–60 सैं.मी. के फासले पर बीजें। संकर व बी.टी. कपास की बिजाई के लिए कतार से कतार की दूरी 67.5 सैंमी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 60 सैं.मी. रखनी चाहिये या कतार से कतार की दूरी 100 सैंमी. व पौधे से पौधे की दूरी 45 सैंमी. रखनी चाहिए।

अमेरिकन कपास (नरमा) की उन्नत किस्म, यदि गेहूं काटने के बाद बोनी है तो बिजाई के समय खेत में 38 किलोग्राम यूरिया व 75 किलोग्राम सुपरफास्फेट प्रति एकड़ बो दें और रेतीली ज़मीन में 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट बिजाई के समय अवश्य डालें। इतनी ही यूरिया खाद बाद में पौधों को छिद्दा करते समय डालें। पोटाश की कमी वाले खेतों में 20 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश बिजाई के समय अवश्य बिखेर दें। यदि कपास खाली पड़ी ज़मीन में बोनी है तो बिजाई के समय सुपरफास्फेट तथा पोटाश ही डालें। बाद में पौधे छिद्दा करते समय व फूल आते समय ऊपर बताई यूरिया की मात्रा दें। देसी कपास में 22 किलोग्राम प्रति एकड़ यूरिया खाद 45 दिन बाद डालें। 22 किलोग्राम प्रति एकड़ यूरिया खाद 75 दिन बाद डालें। हाईब्रिड कपास में बिजाई के समय 50 कि.ग्रा. यूरिया, 150 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट, 40 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश व 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट ड्रिल करें। इसके बाद 50 किलोग्राम यूरिया बिजाई के 45 दिन बाद व 50 किलोग्राम यूरिया बिजाई के 75 दिन बाद डालें।

बिजाई के तुरन्त बाद स्टॉम्प 30 (पैण्डीमिथालीन) का प्रयोग 2 लीटर प्रति एकड़ के हिसाब से 250–300 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से सांठी, सांवक आदि किस्म के खरपतवारों पर अच्छा नियन्त्रण हो जाता है। स्टॉम्प का छिड़काव करते समय खेत में अच्छी नमी का होना ज़रूरी है। बीमारियां प्राय: उन खेतों में अधिक हानि पहुंचाती हैं जिनमें उपचारित बीज न बोया गया हो।

भूमि एवं बीजजनित बीमारियों से बचाव के लिए बोने से पहले बीज का उपचार कर लें। उपचार के लिए 10 लीटर पानी में 1 ग्राम स्ट्रैप्टोसाइक्लिन घोल लें। इस घोल में 5 किलोग्राम साधारण या 7.5 किलोग्राम रोएं उतारे हुए बीजों को लगभग 4 घंटे तक भिगोकर उपचारित करें। जिन खेतों में जड़ गलन का विशेष प्रकोप देखा गया है ऊपर वाले उपचार के साथ 2.5 ग्राम बाविस्टिन बोने से पहले बीज में लगाएं।

जहां दीमक की समस्या हो वहां पर 10 मि.ली. क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. व 10 मि.ली. पानी को मिलाकर फिर एक किलोग्राम बीज का उपचार करके ही बिजाई करें।

बिना रोएं उतारे बीज को बोने के काम में लें तो बुवाई से पहले अल्युमिनियम फास्फाईड की एक 3 ग्राम की टिकिया से प्रति घनमीटर स्थान के हिसाब से 48–72 घंटे तक धूम्रित करें। उससे बीज में छुपी गुलाबी सूण्डियां मर जाएंगी। कपास की पिछली फसल के ठूंठों से होने वाले फुटाव को नष्ट करें ताकि उन पर मीलीबग व चित्तीदार सूण्डी न पनप सके ।

सूरजमुखी

सूरजमुखी की बिजाई के 3 से 6 सप्ताह बाद दो निराई–गोडाई करें एवं उगते बीज को पक्षियों से बचाएं। कटुआ सूण्डी रात में फसल को नुकसान करती है। इस कीट के नियंत्रण के लिए 10 कि.ग्रा. फेनवालरेट 0.4 प्रतिशत धूड़ा प्रति एकड़ खेत में ठीक से मिलाएं या हल्की सिंचाई कर दें। इसके अलावा 80 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. या 50 मि.ली. सायपरमेथरिन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. डैकामैथरीन 2.8 ई.सी. 100 लीटर पानी में प्रति एकड़ भी छिड़क सकते हैं। बीजोपचार 3 ग्राम थाइरम या कैप्टान प्रति किलोग्राम बीज की दर से अवश्य करें।

बैसाखी मूँग

जड़ गलन रोग से बचाव के लिए प्रति किलोग्राम बीज में 2 ग्राम कार्बेण्डाज़िम (बाविस्टिन) मिलाकर बोएं।

अरहर

अरहर की बिजाई मध्य–मार्च से मध्य जून तक करें, परंतु मानक व पारस को मध्य–जुलाई तक बोया जा सकता है। यद्यपि मध्य–अप्रैल की बिजाई से अधिक उपज मिलती है। अरहर की मुख्य उपयुक्त किस्में, यू पी ए एस 120 (मार्च से जुलाई के प्रथम सप्ताह), मानक व पारस (15 जून से 15 जुलाई) हैं। एक एकड़ के लिए 5 से 6 किलोग्राम बीज काफी होता है। बीजने से पहले अरहर के बीजों को अरहर के राईजोबियम के टीके से उपचारित करें। बिजाई पोरा विधि से दो खूडों का फासला 40 सैंटीमीटर रखकर करें। अरहर की पूरी पैदावार लेने के लिए 100 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट तथा 18 किलोग्राम यूरिया खाद प्रति एकड़ बिजाई के समय ही पोर दें।

ज्वार, बाजरा, लोबिया तथा संकर हाथी घास

चारे के लिए ज्वार की 20 मार्च से 10 अप्रैल तथा बाजरे व लोबिया की मार्च के अंत से अप्रैल के शुरू तक बिजाई समाप्त कर लें। ज्वार व बाजरा में 44 कि.ग्रा. यूरिया/एकड़ पोरें। लोबिया में भी इतनी मात्रा में डी.ए.पी. पोरें।

बरसीम व लूसर्न

बरसीम का शुद्ध बीज तैयार करने के लिए फसल से कासनी पौधों को निकाल देना चाहिए। दोनों फसलों में आवश्यकतानुसार पानी लगाएं तथा लूसर्न की कटाई करें।

दूसरी फसल कट जाने के बाद कभी-कभी बरसीम में टोका कीड़े का प्रकोप हो जाता है। चारे वाली फसल में 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

नोट : इस माह फसल बोने से पहले अपने खेतों की मिट्टी की जाँच अवश्य करवाएं। हरियाणा के हर ज़िले में एक-दो मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाएं हैं। अच्छा हो यदि अपने ट्यूबवैल के पानी का भी परीक्षण करवा लें।

सब्जियों में

टमाटर

टमाटर की फसल की सिंचाई हर सप्ताह करें। खेत में पौध रोपने के बाद 35 कि. ग्रा. नाइट्रोजन प्रति एकड़ आधी-आधी दो बार में दें (यदि न दी हो) प्रथम मात्रा रोपाई के लगभग तीन सप्ताह बाद तथा दूसरी मात्रा फसल में फूल आने के समय। किसान खाद देते समय सिंचाई करना न भूलें। खरपतवार निकालते रहें। विषाणु रोग (पत्तों का चुरड़ा-मुरड़ा, पत्ती लपेट, धारियों वाला मोजैक) लगे पौधों को निकाल कर नष्ट कर दें। सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए 400 मिलीलीटर मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर 10-15 दिन के अंतर पर प्रति एकड़ छिड़कें। यदि फल छेदक सूण्डी का आक्रमण हो तो 75 मि.ली. फैनवालरेट 20 ई.सी. या 200 मि.ली. डेल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी. या 60 मि.ली. साईपरमेथ्रिन 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। दवा प्रयोग से पहले ग्रसित फलों को तोड़कर नष्ट कर दें। इस माह फसल से फल मिलने शुरू हो जाएंगे। उन्हें तोड़कर बाज़ार बेचने के लिए भेजें।

बैंगन

फसल की नियमित रूप से सिंचाई करें। खरपतवार निकालें। खड़ी फसल में दो बार किसान खाद दें-प्रथम बार पौध रोपाई के लगभग 4 सप्ताह बाद, 80 किलोग्राम प्रति एकड़ की दर से (20 किलोग्राम नाइट्रोजन) तथा दूसरी बार पौधों में फूल आने के समय इतने ही उर्वरक और दें। नाइट्रोजन खाद देने के बाद सिंचाई करें। विषाणु रोग से बचाव के लिए रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें और नियमित रूप से छिड़काव करते रहें।

यदि बैंगन की फसल में रस चूसने वाले कीटों का आक्रमण हो तो 300-400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। जैसे ही फल लगने शुरू हों तो फल छेदक कीटों का प्रकोप शुरू हो जाता है। इनके नियंत्रण के लिए 75 ग्राम स्पाइनोसेड (ट्रेसर) 45 एस.सी. या 80 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. या 70 मि.ली. साईपरमैथ्रिन 25 ई.सी. या 200 मि.ली. डेल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी. को बदल-बदल कर 200 लीटर पानी में प्रति एकड़ 15 दिन के अंतर पर छिड़कें। दवा प्रयोग से पहले सब्जी बनाने वाले फलों को तोड़ लें तथा दवा प्रयोग के बाद फसल को 8-10 दिनों तक खाने के काम में न लें।

कीटनाशक दवाओं के प्रयोग से पहले टहनियों के ग्रसित भाग व काने फलों को तोड़कर नष्ट कर दें।

मिर्च

फसल की सिंचाई करें और खरपतवारों को निकालते रहें। खड़ी फसल में तीन सप्ताह के बाद तथा दूसरी बार फूल आने के समय 12 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति एकड़ की दर से दें तथा सिंचाई करें। फूल आने के समय प्लानोफिक्स के घोल का (1 मिलीलीटर प्लानोफिक्स को 4½ लीटर पानी में मिलाएं) छिड़काव करें तथा इसे तीन सप्ताह बाद दोहराएं। ऐसा करने से फल कम गिरते हैं तथा उपज अच्छी होती है। चुरड़ा और सफेद मक्खी से रक्षा के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। छिड़काव आवश्यकतानुसार 15-20 दिनों के अंतर पर करें। विषाणु रोग, जो सफेद मक्खी द्वारा फैलते हैं, का भी बचाव इस दवा के प्रयोग से हो जाता है। हरी तैयार मिर्चों को तोड़कर बाज़ार भेजें।

प्याज़ व लहसुन

फसल की सिंचाई करें तथा खुले कंदों पर मिट्टी चढ़ा दें। बीमारी व हानिकारक कीटों से रक्षा के लिए पहले बताई गई दवाओं का प्रयोग करें।

मूली

इस फसल में सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। गर्मी की मूली के लिए केवल पूसा चेतकी किस्म का ही प्रयोग करें। बाहर निकली हुई जड़ों पर मिट्टी चढ़ाएं। जड़ों को सख्त होने से पहले उखाड़ लें। मूली बिजाई के लगभग 40 दिनों के बाद उखाड़ने के योग्य हो जाती है। कीट-पतंगों से रक्षा के लिए 250 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

भिण्डी

कीटों के नियंत्रण के लिए 75-80 मि.ली. स्पाईनोसैड 45 एस. सी. या 400 से 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अंतर पर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

पालक

फसल की नियमित रूप से सिंचाई करें। आवश्यकतानुसार किसान खाद का प्रयोग करें जिससे कि पत्तियों की बढ़वार हो सके। नई फसल की बिजाई भी इस माह की जा सकती है।

तरबूज व खरबूजा

फसल की निराई-गुड़ाई करें तथा उचित सिंचाई का प्रबंध करें। फसल में फूल आने के समय लगभग 6 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति एकड़ की दर से दें तथा सिंचाई करें। लाल भूण्डी (लालड़ी) नामक कीट का

प्रकोप होने पर 25 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 30 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. को 100 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। जड़ों में लट (ग्रब) लगी हों तो 1.6 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. को बिजाई के एक माह बाद सिंचाई के साथ प्रति एकड़ लगाएं। चेपा, हरा तेला या माईट का प्रकोप होने पर 250 मिलीलीटर मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ खेत में छिड़काव करें तथा आवश्यकतानुसार दोहराएं। फल मक्खी लगने पर 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. और 1.25 किलोग्राम गुड़ को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ खेत में छिड़काव करें तथा एक सप्ताह के अंतर पर आवश्यकतानुसार दोहराएं। प्रयोग से पहले ग्रसित फलों को तोड़कर नष्ट कर दें। पाऊडरी मिल्ड्यू नामक रोग लगने पर 800 ग्राम घुलनशील गंधक (सल्फैक्स) का घोल बनाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। अधिक व भरपूर फसल प्राप्ति के लिए तरबूज में 25 पी.पी.एम. (आधा ग्राम जिबरैलिक एसिड) तथा खरबूजे में एथरिल 100 पी.पी.एम. (2 मि.ली. प्रति 20 लीटर पानी प्रति एकड़) का घोल बना कर दो व चार सच्ची पत्तियों पर छिड़काव करें। जिबरैलिक एसिड अल्कोहल में घुलनशील है।

कद्दू जाति की अन्य सब्जियां

कद्दू जाति की अन्य सब्जियों की फसलों की सिंचाई करें, खरपतवार निकालें तथा यूरिया (जैसा कि ऊपर तरबूज-खरबूजा में बताया गया है) दें। हानिकारक कीड़ों तथा बीमारियों से रक्षा के लिए ऊपर बताई गई दवाओं का प्रयोग करें। चप्पन कद्दू तथा टिण्डे की फसल के फलों को तोड़कर बाज़ार भेजें। अन्य सब्जियों में भी इस माह फल उतरने शुरू हो जाएंगे। उन्हें कच्ची ही तोड़कर बाज़ार भेजें।

अरबी

आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। बिजाई के लगभग एक माह बाद यूरिया खाद देकर सिंचाई करें।

शकरकन्दी

शकरकन्दी की काट को खेत में अप्रैल से जुलाई तक लगाते हैं। खेत तैयार करें। पूसा लाल व पूसा सफेद किस्मों को प्रयोग में लें। एक एकड़ में बिजाई के लिए 24,000 से 28,000 बेलों की काटों की आवश्यकता पड़ेगी। खेत तैयार करते समय 10 टन गोबर की सड़ी खाद, 16 किलोग्राम नाइट्रोजन, 225 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट (36 कि.ग्रा. फास्फोरस) तथा 55 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश (32 किलोग्राम पोटाश) प्रति एकड़ की दर से काटों को लगाने से पहले दें। खेत को क्यारियों में बांट लें तथा कतारों में 50-60 सैं.मी. की दूरी पर काटों को लगाएं। पौधे से पौधे की दूरी 30 सैं.मी. रखें। काट लगाते समय ध्यान रखें कि ऊपर तथा नीचे की दोनों गांठें दबी हों।

अन्य सब्जियां

ग्वार तथा लोबिया की फसलों की सिंचाई करें व खरपतवार निकालते रहें। कीट पतंगों से रक्षा के लिए मैलाथियान 50 ई.सी. या रोगोर 30 ई.सी. आदि दवाओं का प्रयोग करें। यह कीटनाशक 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें।

फलों में

इस महीने मौसम में काफी परिवर्तन होता है। तापक्रम बढ़ेगा और तेज़ हवाएं भी चलेंगी जोकि छोटे-2 बने हुए फलों को काफी नुकसान पहुंचा सकती हैं। फल उत्पादकों द्वारा समय पर सिंचाई करना, छोटे-छोटे फलों को गिरने से रोकना, छोटे पौधों के बीच में मूंग वगैरह की फसल लेना, घने लगे हुए फलों को छिद्दा करना, पौधों में बची आधी खाद की मात्रा डालना, छोटे पौधों को सहारा देना और फलों को ठीक ढंग से तोड़कर बाज़ार भेजना आदि बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

संतरा, माल्टा, नींबू आदि

सात साल से अधिक आयु के पौधों में आधी बची हुई 750 ग्राम यूरिया प्रति पौधा डालें और हल्की गुड़ाई करके सिंचाई करें। 1.5 किलोग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड को 500 लीटर पानी में घोल कर छिड़कें। 15 दिन बाद 1.5 किलोग्राम बुझा हुआ चूना व 3 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट को 500 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें। संतरा व माल्टा में फल गिरने की समस्या को कम करने हेतु 6 ग्राम 2,4-डी, 12 ग्राम ओरियोफंजीन व 3 किलोग्राम जस्ता और 1.5 किलोग्राम चूना को 550 लीटर पानी में मिलाकर पौधों पर इस माह के आखिर में छिड़कें।

नींबू जाति के पौधों को नींबू का तेला (सिल्ला), सफेद मक्खी तथा सुरंगी कीड़े, पत्तों, टहनियों तथा फलों में से रस चूसकर तथा टेढ़ी-मेढ़ी सुरंगें बनाकर भारी नुकसान करते हैं। इन कीड़ों के अधिक आक्रमण से पत्ते पीले पड़ जाते हैं। नींबू के तेला व सुरंगी कीट के नियंत्रण हेतु अप्रैल लगते ही 750 मि.ली. मैटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. या 625 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ बाग में छिड़कें। यदि सफेद मक्खी का आक्रमण हो तो 500 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 डब्ल्यू. एस.सी. प्रति एकड़ छिड़कें।

अंगूर

नए लगाए बाग में 25-30 ग्राम यूरिया प्रति बेल दूसरे सप्ताह डालें और सिंचाई करें। इसके अतिरिक्त मुख्य तने व पत्तियों के बीच से निकलने वाली टहनियों को तोड़ते रहें। बेलों के सीधा बढ़ने के लिए सीढ़ियों या बांस का सहारा दें।

पांच साल से ऊपर के फल दे रहे पौधों में 340 ग्राम यूरिया व 500 ग्राम पोटाशियम सल्फेट डालें और गुड़ाई करके सिंचाई करें। 15 अप्रैल के बाद सिंचाई हर सप्ताह करनी आवश्यक है। बीज रहित अंगूर की किस्मों से अधिक उपज लेने के लिए पूरी तरह फूल आ जाने की हालत में 20 पी. पी. एम. (20 कि.ग्रा./लीटर), जी. ए. व फल लगते समय 40 पी. पी. एम. (40 कि.ग्रा./लीटर) का छिड़काव करें।अंगूर की नई कोंपलों को, अंगूर के चुरड़ा, जो छोट-छोटे पतले शरीर वाले भूरे रंग के कीड़े होते हैं, भारी क्षति पहुंचाते हैं। कीड़े पत्तों की नसों के साथ-साथ चलते हैं व पत्तों की निचली सतह को कुरेद कर रस चूसते हैं। इससे पत्तियां पीली एवं तांबे जैसे रंग की हो जाती हैं। इनकी रोकथाम के लिए 150 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. या 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 500 लीटर पानी में

घोलकर प्रति एकड़ बेलों पर छिड़कें। कई बार बालों वाली सूण्डियां अंगूर की बेलों, पत्तों तथा फलों पर भी आक्रमण करती हैं। जो कीड़े पत्तों को खा जाते हैं, इनमें छेद कर देते हैं तथा फलों को भी खा जाते हैं। छोटी सूण्डियां, जो कुछ ही पत्तों पर समूह में एकत्र मिलती हैं, वाले पत्तों को तोड़कर नष्ट कर दें। लाल धब्बे वाली बीमारी के नियंत्रण के लिए बाविस्टीन 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करें।

अमरूद

पौधों की सिंचाई 10–15 दिन के अंतराल पर करें। फल मक्खी के नियंत्रण के लिए एक एकड़ बाग में 7–8 फीरोमोन्ज ट्रैप लगाएं।

आड़ू व अलूचा

आड़ू (450 ग्राम) व अलूचा (180 ग्राम) में बची हुई यूरिया डालें। आड़ू व अलूचे के बागों की सिंचाई करें। इनमें अल (चेपा) बहुत हानि पहुंचाता है जिसके कारण पत्ते पीले होकर मुड़ जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 500 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ बाग के पेड़ों पर छिड़कें व आवश्यकता हो तो 15 दिन बाद यही छिड़काव फिर करें।

बेर

बेर के पौधों में सिंचाई बिल्कुल न करें क्योंकि पौधे इस समय सुप्तावस्था में आने लगते हैं। आखिरी सप्ताह में पौधों की काट-छांट करनी ज़रूरी है ताकि अगले वर्ष पैदावार अच्छी मिले।

आम

आम के फल गिरने की समस्या काफी रहती है। इसके नियंत्रण के लिए 2 प्रतिशत यूरिया व 0.5 प्रतिशत ज़िंक तथा 20 पी. पी. एम. 2,4-डी (2 ग्राम 2,4-डी 100 लीटर पानी में) का पौधों पर छिड़काव अवश्य करें।

यदि अब भी आम पर तेला आक्रमण कर रहा हो तो 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़कें। इस छिड़काव में पत्तियों के काजली रोग का भी बचाव हो जाता है। 1½ से 2 किलोग्राम यूरिया का घोल 100 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कने से काफी लाभ संभव है।

काला सिरा (ब्लैक टॉप) का नियंत्रण के लिए 6 ग्राम बोरेक्स प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

लीची

फल लगने के बाद 875 ग्राम यूरिया प्रति पौधा डालकर गोड़ाई करके सिंचाई करें। फल फटने से रोकने के लिए प्राप्त मात्रा में नमी बनाए रखें।

नोट : जैसे ही आषाढ़ी फसलों से खेत खाली होंगे, जिन किसान भाइयों ने नए बाग लगाने हों वे ज़मीन की तैयारी, निशानदेही आदि शुरू करें व मिट्टी की जांच करवाएं।

पशुओं में

- गेहूं-कटाई के दौरान व बाद में नई तूड़ी आने के बाद पशुओं में पेट बंधे की समस्या बहुत आम है, अत: कोशिश करें कि पशु-आहार में कभी-भी एकदम से बदलाव न करें और इस समय में पशुओं के हाज़मे को स्वस्थ रखने के लिए उचित प्रबंध रखें। पशुओं को सेंधा नमक, हरड़, हींग इत्यादि पशु-चिकित्सक की सलाहनुसार दे सकते हैं।
- सुनिश्चित करें कि सभी पशुओं को गलघोंटू व मुँहखुर के टीकाकरण हो गए हों, विशेषकर वयस्क व नए खरीदे पशुओं का ज़रूर ध्यान रखें।
- दिन में तापमान की बढ़ोत्तरी हो जाती है, अत: पशुओं को दोपहर में सीधे गर्म हवाओं से बचाएं।
- गर्मियों में पशुओं का दूध न घटे, इसलिए ध्यान रखें कि पशुओं के शरीर में पानी की कमी न हो पाए। अत: ऐसा प्रबंधन करें कि पशुओं को 24 घंटे ताज़ा/ठण्डा पीने योग्य पानी उपलब्ध रहे यदि 24 घण्टे पानी उपलब्ध नहीं करवा सकते तो कम से कम 3-4 बार ठण्डा पीने योग्य पानी अवश्य उपलब्ध करवाएं और दिन में कम से कम 2-3 बार अवश्य नहलाएं व बीच-बीच में शरीर पर पानी भी डालें (विशेषकर भैंसों में)।
- नई तूड़ी को उपयुक्त मात्रा में यूरिया से उपचारित करके उसकी पौष्टिकता बढ़ाएं।
- हरे चारे में कमी के कारण पशुओं में खनिज तत्वों व लवणों की कमी हो सकती है, अत: हर पशु को खनिज मिश्रण ज़रूर दें।
- चारे के लिए बोई गई मक्का, बाजरा, ज्वार आदि की कटाई 45-50 दिन की अवस्था में करें।
- हर ब्यांत में पशुओं के दूध की एक बार ज़रूर नज़दीकी पशु-प्रयोगशाला में जांच करवाएं।
- ऐसे मौसम में कई बार पशु गर्मी के लक्षण दिन के बजाय रात को दिखाता है, अत: पशुपालक मादा पशुओं में गर्मी के लक्षण जैसे बार-बार रंभाना, बेचैन होना, बार-बार पेशाब करना इत्यादि का ध्यान रखें व गर्मी के लक्षण के 10-12 घण्टे बाद कृत्रिम गर्भाधारण करवाएं।

घर-आंगन में

पानी जीवन का आधार है अत: घरेलू स्तर पर पानी का शुद्धिकरण बहुत आवश्यक है। घरेलू स्तर पर पानी का शुद्धिकरण जनता वाटर फिल्टर के द्वारा किया जा सकता है जो कि एक बहुत ही सस्ती एवं स्थानीय तकनीक है।

अप्रैल के महीने में मौसम परिवर्तन के कारण शरीर के लिए पानी की ज़रूरतें भी बढ़ जाती हैं और थोड़ी देर के बाद ही कुछ ठण्डा पीने का मन करता है। इन दिनों बाज़ार में पेय पदार्थ बनाने वाले फलों एवं सब्जियों की बहुतायत होती है। अत: आप इनको घर पर बनाकर उपयोग में ला सकते हैं। उपर्युक्त जनता वाटर फिल्टर एवं पेय पदार्थ बनाने के लिए आप अपने ज़िले में कार्यरत कृषि विज्ञान केन्द्र में ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (गृह विज्ञान) से संपर्क स्थापित करें।

किसान कॉल सैंटर : एक परिचय

✍ अशोक कुमार एवं राजेश कुमार[1]
विस्तार शिक्षा निरदेशालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत की अधिकतर जनसंख्या अपनी जीविका के लिए खेती पर निर्भर है। आज भी इस आधुनिक और तकनीकी युग में भी देश के अधिकतर किसान पारंपरिक खेती की तकनीकों का प्रयोग करते हैं। इस आधुनिक युग में भारत के वैज्ञानिकों ने कृषि के क्षेत्र में नई-नई तकनीकों की खोज की है किन्तु किसान अभी भी कई नई तकनीकों से अनजान हैं या फिर जब किसान खेती के लिए इन नई-नई तकनीकों को अपनाते हैं तो उन्हें कई नई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

इन्हीं समस्याओं को दूर करने के लिए भारत सरकार ने 21 जनवरी 2004 को भारतीय कृषि मंत्रालय के सहयोग से 'किसान कॉल सैंटर' योजना का शुभारंभ किया था। यह सुविधा संपूर्ण भारत में एक साथ प्रारंभ की गई थी। किसान कॉल सैंटर का मुख्य उद्देश्य किसानों की खेती-बाड़ी व कृषि तकनीकी से जुड़ी समस्याओं का निवारण क्षेत्रीय भाषा में तुरंत किया जाता है।

देश का कोई भी किसान घर बैठे अपनी कृषि संबन्धित समस्याओं के विषय में कृषि विशेषज्ञों से किसान कॉल सेंटर के टोल-फ्री (नि:शुल्क) नंबर 1551 या 1800-180-1551 पर कॉल करके समाधान प्राप्त कर सकता है। इस टोल-फ्री नंबर सेवा का लाभ किसान मोबाईल फोन और लैंडलाईन फोन के माध्यम से उठा सकते हैं। कॉल सेंटर की सेवाएं सप्ताह के सातों दिन प्रात: आठ बजे से रात दस बजे तक उपलब्ध रहती हैं। किसान कॉल सेंटर पर निम्नलिखित विषयों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं :

किसानों की कृषि से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करने हेतु कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र, राज्य सरकार एवं गैर-सरकारी संगठन भी विभिन्न प्रसार माध्यमों द्वारा अपने स्तर से भी प्रयासरत हैं।

इसी दिशा में चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार में भी किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक नि:शुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

[1]डी.टी.पी. ऑपरेटर, विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

भूमि की उर्वरा शक्ति : हरी खाद

✍ धर्म प्रकाश, सुनीता श्योराण एवं देवराज
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आज के युग में फसल उत्पादन करने के लिए असंतुलित मात्रा में रासायनिक पदार्थों के इस्तेमाल करने से मिट्टी के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहे हैं जिनसे बचने के लिए पोषक तत्वों के अन्य स्त्रोतों का इस्तेमाल करना एक बहुत बड़ी ज़रूरत बनकर उभरा है। इन स्त्रोतों में हरी खाद का इस्तेमाल करना भी एक विकल्प माना गया है। फसल उत्पादन में हम हरी खाद का इस्तेमाल करके न केवल खेती की लागत को कम करते हैं, बल्कि मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को भी अगली पीढ़ियों के लिए प्रदान कर सकते हैं।

हरी खाद का उपयोग करने से मृदा स्वास्थ्य को हम जीवित दशा में लम्बे समय के लिए उत्पादन योग्य बना सकते हैं। पशुधन में आई कमी, गोबर का घरों में ईंधन के रूप में उपयोग तथा गुणवत्ता युक्त गोबर की खाद की अनुपलब्धता आदि समस्याओं को मद्देनज़र रखते हुए हरी खाद एक सबसे उत्तम एवम् सरल प्रयोग है।

हरी खाद एक ऐसा साधन है जो कि मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में बढोत्तरी करता है तथा फसलों के लिए विभिन्न पोषक तत्वों को जैविक माध्यम से प्रदान करता है। लम्बे समय से हो रहे प्रयोगों से भली भांति सिद्ध हो चुका है कि गुणवत्ता युक्त अच्छी फसल उत्पादन के लिए खेतों में हरी खाद देना अति लाभकारी है।

हरी खाद के प्रकार

1. खेत में उगाकर उसी खेत में हरी खाद लगाना : यह विधि सरल तथा अधिक लोकप्रिय है। इस विधि में जिस खेत में हरी खाद लगाना है उसी खेत में फसल उगाकर एक निश्चित समय के बाद (लगभग सात से आठ सप्ताह) जुताई करके मिट्टी में गलने-सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता है। आजकल रोटा वेटर से हरी फसल को खेत में मिला दिया जाता है। जिससे लागत तथा श्रम कम लगता है।

2. दूसरी जगहों से लाकर खेत में हरी खाद लगाना : यह विधि उत्तरी भारत में अधिक प्रयोग नहीं होती है। इससे हरी खाद वाली फसलें दूसरे स्थानों पर उगाई जाती हैं तथा एक निश्चित समय पर फसलों को काटकर जिस खेत में हरी खाद लगानी है उसमें फैलाकर, जोतकर मिट्टी में मिला दिया जाता है। इस विधि में पेड़-पौधों व झाड़ियों की पत्तियों, हरी टहनियों आदि को इकट्ठा करके खेत में मिलाया जाता है।

हरी खाद वाली फसलें

हरी खाद के लिए मुख्यत: दलहनी फसलें जिनकी जड़ों पर गांठें पाई जाती हैं तथा इन गांठों में विशेष प्रकार के सहजीवी जीवाणु व सूक्ष्म जीव उपस्थित रहते हैं आदि का प्रयोग किया जाता है। ये जीवाणु वायुमण्डल में उपस्थित नाइट्रोजन को जैविकी तरीकों से स्थिरीकरण कर पौधों को उपलब्ध कराते हैं। हरी खाद के लिए सनई व ढैंचा का विशेष रूप से

इस्तेमाल किया जाता है।

हरी खाद वाली फसलों की आवश्यक विशेषताएं

1. चयन की गई फसलों की जड़ें गहरी होनी चाहिएं ताकि जड़ें नीचे की मिट्टी में जाकर अधिक से अधिक पोषक तत्वों को खींच सकें, मिट्टी को भुरभुरी बना सकें, नीचे की मिट्टी के पोषक तत्व ऊपरी सतह में इकट्ठा हो सकें जो कि अगली फसल के काम आते हैं।
2. फसल में तेज़ी से तथा अधिक मात्रा में पत्तियां व कोमल शाखाएं निकल सकें जिससे प्रति ईकाई क्षेत्र में अधिक हरा पदार्थ मिल सके।
3. फसलों का वानस्पतिक भाग मुलायम और बिना रेशे वाला हो ताकि जल्दी से गल सड़ सकें।
4. फसलों में अधिक से अधिक वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को स्थिरीकरण करने की क्षमता होनी चाहिए।
5. फसल की जल व पोषक तत्वों की मांग कम से कम होनी चाहिए।
6. फसल का उत्पादन खर्च कम हो तथा प्रतिकूल अवस्था जैसे कि जलक्रान्ति, सूखा व अधिक ताप के प्रति सहनशील हो।

हरी खाद उगाने की विधि

गेहूं या रबी की अन्य कोई फसल की कटाई करके वर्षा आने के तुरन्त बाद या सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो एक सिंचाई करके हरी खाद की फसलों की बुवाई शुरू कर देनी चाहिए। खेत में पर्याप्त नमी की मात्रा के अलावा फसल की बुवाई के लिए विशेष तैयारी की ज़रूरत नहीं होती। इसके लिए 30-40 किग्रा प्रति हैक्टेयर के हिसाब से ढैंचा या सनई का बीज लेकर आठ घंटों के लिए पानी में डुबो कर रखना चाहिए। अगर आगामी धान की फसल लेनी हो तो मई माह के पहले सप्ताह में बुवाई कर देनी चाहिए। मिट्टी की जांच के आधार पर जिन खेतों में फास्फोरस की कमी हैं उनमें सिंगल सुपर फास्फेट खेत में डालनी पड़ती है तथा फिर अगली फसल जैसे धान में फास्फोरस देने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

इससे आगे जब ढैंचा या सनई की फसल सात-आठ सप्ताह की हो जाए तो उसको धान लगाने से दो-चार दिन पहले खेत में रोटा-वेटर चलाकर रला-मिला देना चाहिए। ढैंचा क्षारीय भूमि या बिल्कुल बलुई मिट्टी के सुधार हेतु प्रयोग किया जाता है। यह प्रयोग लगभग 35-45 कि. ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर की बचत करता है तथा ढैंचा की फसल का हरी खाद के रूप में प्रयोग करने से फसलों में लोहे की कमी को दूर करता है। ग्रीष्मकालीन मूंग की फसल भी हरी खाद के रूप में हम प्रयोग कर सकते हैं। लगभग 45-50 दिन की हरी खाद की फसल को मक्का की फसल को बोने से 10 दिन पहले खेत में मिला देना अच्छा बताया गया है। अच्छी मक्का की फसल लेने के लिए नाइट्रोजन की सिफारिश की गई मात्रा खेत में डालें।

हरी खाद देने के लाभ

1. हरी खाद केवल नाइट्रोजन व कार्बनिक पदार्थ ही नहीं बल्कि इनके साथ-साथ अन्य मुख्य व सूक्ष्म पोषक तत्व भी पौधों को प्रदान करता है।
2. हरी खाद के प्रयोग से मिट्टी भुरभुरी, वायुसंचार अच्छा, जलधारण क्षमता में बढ़ोत्तरी तथा मृदा की क्षारीयता में सुधार होता है।
3. हरी खाद देने से मृदा में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या में वृद्धि होती है जो कि मृदा की उपजाऊ शक्ति व फसलों की उपज में बढ़ोत्तरी करते हैं।
4. यह खेत में खरपतवारों की वृद्धि पर रोक लगाता है जिससे हमारी फसलों को अधिक पोषक तत्व व पानी उपलब्ध होता है तथा मृदा संरचना का सुधार होता है।
5. हरी खाद का प्रयोग करने से रासायनिक उर्वरकों के उपयोग में कमी आती है जिससे आय बढ़ती है तथा टिकाऊ एवम् स्वस्थ खेती को बढ़ावा मिलता है।

ध्यान देने योग्य बातें

1. खेत की मिट्टी की जांच अवश्य करवानी चाहिए। हरी खाद के लिए उपरोक्त विवरण अनुसार ढैंचा या सनई या ग्रीष्मकालीन मूंग आदि फसलों का चयन उत्तम रहता है।
2. फसलों को एक विशेष अवस्था पर ही खेत में मिलाएं। इस अवस्था से पहले या बाद में खेत में पलटने से अपेक्षित लाभ नहीं मिलता। यह अवस्था उस समय होती है जब फसल कुछ अपरिपक्व अवस्था में होती है तथा फूल निकलने लगते हैं। इस समय पौधों के वानस्पतिक भाग मुलायम होते हैं, कार्बन : नाइट्रोजन अनुपात कम होता है तथा पौधों के अपघटन में सुविधा रहती है जिससे आगामी फसलों को नाइट्रोजन शीघ्र ही उपलब्ध हो जाती है।
3. हरी खाद का प्रयोग फसलों को लगभग सभी पोषक तत्व थोड़ी मात्रा में धीरे-धीरे प्रदान करता है। इसलिए हरी खाद रासायनिक उर्वरक का विकल्प नहीं है, इसके अलावा पौधों को पोषक तत्वों की पूर्ति करने हेतु संतुलित मात्रा में रासायनिक उर्वरकों या अन्य पोषक तत्वों के स्त्रोतों जैसे-गोबर की खाद, केंचुए की खाद तथा कम्पोस्ट इत्यादि का भी प्रयोग कर सकते हैं।

लेखकों से अनुरोध

हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। लेख में अंग्रज़ी शब्दों का प्रयोग न करें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें**। अपना लेख हमें ई-मेल पर भी भेज सकते हैं :

haryanakhetihau@gmail.com

उर्वरकों की पहचान : कैसे करें

✍ सोनिया देवी, के. के. भारद्वाज एवं विशाल गोयल
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जैसा कि हम सब जानते हैं कि भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसकी आधी से ज़्यादा जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। भारत की जनसंख्या 125 करोड़ है जिनका पेट भरने के लिए कृषि ही एक मात्र साधन है। तेज़ी से बढ़ती इस जनसंख्या के लिए कृषि का विकास होना बहुत ही आवश्यक है। कृषि का विकास कई घटकों पर निर्भर है जैसे कि मिट्टी की प्रजननता, बीज की गुणवत्ता, उर्वरकों की गुणवत्ता, जलवायु परिवर्तन, आर्थिक व सामाजिक अनेक कारण हैं। उपर्युक्त घटकों में से उर्वरक एक बहुत ही महत्वपूर्ण कड़ी है। उर्वरक खेती में प्रयोग किए जाने वाले ऐसे रसायन हैं जिससे पौधों की वृद्धि होती है और जिसके परिणाम स्वरूप उपज बढ़ती है। इनका प्रयोग मिट्टी व पत्तियों पर किया जाता है। अगर इनका आवेदन मिट्टी पर किया जाए तो पौधे अपनी जड़ों द्वारा ज़रूरी पोषक तत्व ग्रहण कर लेते हैं। इनसे आवश्यक पोषक तत्वों की तत्काल पूर्ति होती है और यह मिट्टी में लम्बे समय तक बने रहते हैं।

इन रासायनिक उर्वरकों की कीमत बाज़ार में बहुत ज़्यादा है। इनकी महंगी कीमतों के कारण निर्माता कंपनियों ,उद्योगपतियों में मुनाफा कमाने की होड़ लगी हुई है। जिसके कारण उनकी मंशा रहती है कि मिलावटी उर्वरकों का उद्योग तेज़ी से बढ़ाएं। लेकिन दूसरी ओर गरीब किसान इससे अनजान हैं। इन नकली रसायनों के कारण फसल बर्बाद हो रही है। जिसका सीधा असर किसान व आम जनता पर हो रहा है। किसानों को असली और नकली उर्वरकों में कोई फर्क नज़र नहीं आता क्योंकि यह बिलकुल एक जैसे दिखाई देते हैं। इन मिलावटी उर्वरकों को बेचने के लिए विक्रेता द्वारा किसानों को लुभाया जा रहा है जिसमें किसानों को अनेक तरह की छूट, ऑफर, कम कीमत का लोभ और उपहार दिए जा रहे हैं।

इस समस्या से निपटने के लिए सबसे पहले किसान को ही कदम उठाना पड़ेगा। किसान उर्वरक खरीदते समय सतर्कता बरतें। वे उर्वरकों को देखकर, छूकर परख सकते हैं ।यदि किसानों को उर्वरक खरीदते समय कोई संदेह हो तो टेस्टिंग किट द्वारा उर्वरकों की शुद्धता की पुष्टि कर सकते हैं। इस कार्यवाही के लिए उन्हें जनपद के उप कृषि निदेशक तथा ज़िला कृषि अधिकारी या कृषि निदेशक, हरियाणा को सूचित करना होगा ।

उर्वरकों की गुणवत्ता की पहचान

किसानों द्वारा उपयोग किए जाने वाले प्रमुख उर्वरकों में यूरिया, डाई अमोनियम फॉस्फेट (डी ए पी, सुपर फॉस्फेट, ज़िंक सल्फेट,पोटाश खाद, म्यूरेट ऑफ पोटाश (एम ओ पी) आदि शामिल हैं।

नकली उर्वरकों का प्रभाव

नकली व मिलावटी उर्वरकों के कारण किसान को सिर्फ आर्थिक नुकसान ही नहीं बल्कि इसका स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है। इससे पर्यावरण का संतुलन भी बिगड़ रहा है। नकली रासायनिक खाद मिट्टी में ज़हर का काम कर रही है। इसके कारण मिट्टी के आवश्यक गुण भी विलुप्त हो रहे हैं जैसे कि ज़्यादातर फसलों की न्यूट्रल पी. एच. पर अच्छी पैदावार होती है लेकिन इस मिलावट के कारण मिट्टी की पी. एच में बदलाव आ रहा है जिससे उत्पादन घट रहा है। इन रासायनिक उर्वरकों के कारण मिट्टी के सूक्ष्म जीवाणु भी नष्ट हो रहे हैं जो कि आवश्यक पोषक तत्वों को प्रदान करने में सहायक हैं।

विकल्प

नकली उर्वरकों के प्रभाव से बचने के लिए वैज्ञानिकों द्वारा सिफारिश की गयी है कि किसानों को नकली रासायनिकों की जगह जैविक उर्वरकों और बायोफर्टिलाइज़र्स का इस्तेमाल करना चाहिए। जैविक उर्वरकों में एजोटोबेक्टर, राइजोबियम, फोस्फोटिका आदि शामिल हैं। जिनसे मिट्टी की प्रजननता व आवश्यक गुणों में सुधार आता है। इस विकल्प के साथ साथ किसानों को रासायनिक उर्वरक खरीदते समय जागरूक रहना चाहिए और विक्रेता द्वारा दिए गए लोभ में न आकर ध्यानपूर्वक उर्वरकों की गुणवत्ता की जाँच करनी चाहिए।

उर्वरक का नाम	पहचान का तरीका
यूरिया	रंग : सफेद व चमकीला आकार : एक ही आकार के गोल दाने यह पानी में घुलने की पूरी क्षमता रखता है और घोल के स्पर्श से ठंडक का अनुभव होता है। यदि गर्म तवे पर यूरिया रखा जाए और पिघल जाए, अधिक गरम करने पर अवशेष न बचे तो समझ लेना चाहिए कि यूरिया असली है अन्यथा नहीं।
डाई अमोनियम फॉस्फेट (डी ए पी)	रंग : काला, भूरा या बादामी, सख्त, दानेदार। इनका रंग नाखूनों में रह जाता है। यदि इसके दानों को हथेली पर रखकर चूना मिलाकर रगड़ा जाए तो इससे तीखी गंध आती है जो कि असहनीय होती है। इसके दानों को गर्म तवे पर रखा जाए तो फूलने लगते हैं।
सुपर फॉस्फेट	प्रमुख मिलावटी उर्वरक : डी ए पी तथा एन पी के का मिश्रण यह डी ए पी के जैसा ही होता है बस फर्क इतना है कि यह चूर्ण और दाने दोनों के रूप में उपलब्ध है और गर्म तवे पर रखने से फूलता नहीं है।
ज़िंक सल्फेट	प्रमुख मिलावटी उर्वरक : मैग्नीशियम सल्फेट यह मैग्नीशियम सल्फेट जैसा होता है। डी ए पी व ज़िंक सल्फेट को एक-एक चम्मच कांच के दो अलग गिलासों में डालकर घोल बना लें। ज़िंक के घोल को डी ए पी के घोल में मिला दें, यदि थक्केदार अवशेष बन जाए तो ज़िंक सल्फेट शुद्ध व ठीक है । ज़िंक सल्फेट में पतला कास्टिक डालने पर मटमैला मांड बनना चाहिए और मोटा कास्टिक डालने पर घोल मिल जाना चाहिए।
म्यूरेट ऑफ पोटाश (एम ओ पी)	रंग: सफेद, कणदार, पीसे हुए लाल मिर्च और नमक के मिश्रण जैसा यदि इस पर पानी की कुछ बूंदे डाली जाएं तो दाने आपस में चिपकने नहीं चाहिएं और पानी में घोलने पर लाल रंग सतह पर तैरना चाहिए। चखने पर इसका स्वाद तीक्ष्ण कसैला सा लगता है। यदि इसका स्वाद नमकीन लगे तो इसमें मिलावट पाई जा सकती है।

बीज उत्पादन के आनुवांशिक सिद्धान्त

✍ सुनील कुमार एवं सतबीर सिंह जाखड़
बीज विज्ञान एवं तकनीकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

खेती में काम आने वाले संसाधनों में बीज सबसे ज़रूरी है क्योंकि अगर किसान अच्छी किस्म का शुद्ध बीज नहीं डालेगा तो सभी संसाधनों पर लगाये हुये पैसे व मेहनत का पूरा मुनाफा कभी नहीं मिलेगा। उन्नतशील किस्मों की पूर्ण क्षमता का दोहन करने के लिए उत्तम बीज एक आधारभूत आवश्यकता हो जाती है। अन्यथा इन किस्मों के संचित गुणों में कमी आती जाती है तथा वह अपने गुणों को छोड़ देती है। अनुसंधानों से पता चला है कि अधिक उपज देने वाली किस्मों के बेहतर गुणवत्ता वाले बीज का उपयोग करके कृषि उत्पादन लगभग 15–20 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। उत्तम बीज के लक्षण निम्नलिखित हैं :

आनुवांशिक शुद्धता : बीज में अपनी किस्म/प्रजाति के अनुरूप आकार, प्रकार, रूप, रंग व भार के सभी लक्षण होने पर ही बीज को आनुवांशिक रूप से शुद्ध माना जाता है।

भौतिक शुद्धता : भौतिक रूप से शुद्ध बीज में खरपतवार व अन्य फसलों के बीज नहीं होने चाहिएं क्योंकि यह अशुद्धता कम पैदावार का कारण बनती है। सामान्य तौर पर भौतिक शुद्धता 98 प्रतिशत से कम नहीं होनी चाहिए।

जमाव क्षमता व ओज : उत्तम बीज का दूसरा लक्षण उसकी उच्च जमाव क्षमता व ओज का होना होता है जिसका खेत में उगे पौधों की संख्या, बढ़वार और अन्ततः पैदावार से सीधा सम्बन्ध होता है। बीज की जमाव क्षमता प्रतिशत निर्धारित मात्रा से कम नहीं होनी चाहिए।

नमी की मात्रा : बीज में नमी की उपयुक्त मात्रा का होना अति आवश्यक है। अगर बीज में नमी निर्धारित मात्रा से अधिक हो तो भण्डारण के दौरान बीज की जमाव शक्ति व ओज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

बीज स्वास्थ्य : रोग व कीटों से क्षतिग्रस्त बीज का जमाव व ओज घट जाता है तथा पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी क्षीण हो जाती है अन्ततः उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

किसानों को उच्च गुणवत्ता वाले बीज उपलब्ध कराने के उद्देश्य से बीज वृद्धि का कार्य निम्नलिखित तीन चरणों में किया जाता है :

प्रजनक बीज (ब्रीडर सीड) : यह बीज की वह श्रेणी है जो किस्म बनाने वाले प्रजनक (वैज्ञानिक) द्वारा थोड़ी मात्रा में ही पैदा की जाती है। इसे किस्म बनाने वाले वैज्ञानिक या उसी संस्थान जैसे कृषि विश्वविद्यालय या कृषि संस्थान द्वारा तैयार किया जाता है। इस श्रेणी का बीज आनुवांशिकता के आधार पर 100 प्रतिशत शुद्ध व सबसे महंगा होता है व आधार बीज (फाउंडेशन सीड) बनाने के काम आता है। इसकी थैली पर सुनहरे पीले रंग का लेबल होता है जिस पर फसल एवं किस्म के बीज परीक्षण के विवरण के साथ प्रजनक के हस्ताक्षर होते हैं। यह बीज प्रमाणीकरण संस्था द्वारा प्रमाणित नहीं किया जाता बल्कि एक उच्च स्तरीय विशेषज्ञों की टीम द्वारा इसका निरीक्षण (मोनीटरिंग) किया जाता है।

आधार बीज (फाऊंडेशन सीड) : यह श्रेणी प्रजनक बीज द्वारा तैयार की जाती है व आनुवांशिकता के आधार पर ज़्यादातर फसलों में 99 प्रतिशत शुद्धता होती है। राष्ट्रीय बीज निगम के विशेषज्ञों के कड़े निरीक्षण में सरकारी फार्मों, प्रयोग क्षेत्रों, कृषि विश्वविद्यालयों या निपुण बीज का उत्पादकों द्वारा आधार बीज को तैयार किया जाता है। आधार बीज का प्रमाणीकरण संस्थाओं द्वारा निरीक्षण एवं अनुमोदित किया जाता है। इसका रखरखाव इस प्रकार से किया जाता है कि बीज की आनुवांशिकी पहचान एवं शुद्धता प्रमाणीकरण मानक के ही अनुसार हो। आधार बीज की थैलियों पर इसकी उत्पादक संस्था का हरे रंग का लेबल एवं बीज प्रमाणीकरण का सफेद रंग का टैग लगा होता है जिस पर विवरण के साथ संस्था के प्रतिनिधि के हस्ताक्षर होते हैं।

प्रमाणित बीज (सर्टिफाइड सीड): प्रमाणित बीज आधार बीज की संतति से उत्पादित किया जाता है तथा इस प्रकार से देखरेख एवं रखरखाव किया जाता है कि बीज की आनुवांशिकी पहचान एवं शुद्धता प्रस्तावित प्रमाणीकरण मानक फसल के अनुसार हो जिसे प्रमाणित किया जाता है। यह बीज विभिन्न सरकारी संस्थानों, कृषि अनुसंधान संस्थानों, बीज निगमों तथा गैर सरकारी (प्राईवेट) बीज संस्थाओं द्वारा तैयार किया व बेचा जाता है। प्रमाणित बीज प्रमाणीकृत बीज की संतति भी हो सकती है यदि उसका जनन काल आधार बीज को मिलाकर तीन संतति से ज़्यादा न हो। प्रमाणित बीज की थैलियों पर बीज उत्पादक संस्था का हरे रंग का लेबल व बीज प्रमाणीकरण संस्था का नीले रंग का टैग लगा होता है। जिस पर विवरण के साथ संस्था के प्रतिनिधि के हस्ताक्षर होते हैं।

सच्चे नामपत्रित बीज (ट्रूथफुली लेबल्ड सीड) : बीज प्रमाणीकरण के लिए केवल वही किस्में योग्य होती हैं, जो कि बीज एक्ट 1966 की धारा 5 के अनुसार अधिसूचित होती हैं। लेकिन जो किस्में अधिसूचित नहीं होतीं तथा किसानों में जिनकी मांग होती है, उनका सच्चे नामपत्रित बीज (ट्रूथफूल सीड) का उत्पादन किया जाता है। इसका उत्पादन बीज प्रमाणीकरण संस्था की देखरेख के बिना ही बीज उत्पादन संस्था द्वारा किया जाता है। ऐसे बीज की पैकिंग पर बीज उत्पादन संस्था द्वारा हरे रंग का लेबल लगाया जाता है जिस पर बीज परीक्षण विवरण के साथ उत्पादक संस्था के प्रतिनिधि के हस्ताक्षर होते हैं।

बीज वृद्धि के दौरान किस्मों की आनुवांशिकी शुद्धता में गिरावट के लिए दोषी कारक व अनुरक्षण के उपाय :

- विकासात्मक परिवर्तन को कम करने के लिए बीज फसल को उस क्षेत्र में ही लगाना चाहिए जिस क्षेत्र के लिए उपयुक्त है।
- किस्मों की आनुवांशिकी शुद्धता की कमी के लिए यांत्रिक मिश्रण बहुत ही महत्त्वपूर्ण कारक होता है। मिश्रण को कम करने के लिए खेत से अन्य पौधों को निकालना (अन्य किस्म), कटाई एवं संग्रहण आदि के समय ध्यान रखना अत्यधिक आवश्यक है।

- किस्मों के ह्रास के लिए उत्परिवर्तन उतना महत्त्वपूर्ण कारक नहीं है क्योंकि सूक्ष्म (गौण) उत्परिवर्तन की अभिन्नता की पहचान करना बहुत ही मुश्किल है। ऐसा उत्परिवर्तन जो आंखों के द्वारा देखा जा सकता हो, उसको खेत से तुरन्त निकाल देना चाहिए। अवांछनीय पौधों का बीज खेत से निकालते रहने से बीज फसल में उत्परिवर्तन से होने वाले ह्रास को काफी हद तक रोका जा सकता है।
- पर-परागित फसलों में स्व-परागित फसलों की तुलना में प्राकृतिक संकरण प्राय: ज़्यादा पाया जाता है। प्राकृतिक संकरण के द्वारा बीज में कितनी आनुवांशिकी अशुद्धता हो सकती है यह निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है:
  1. किस्म की प्रजनन प्रणाली
  2. अलगाव दूरी
  3. किस्मों का समूह
  4. परागण करने वाले कारक

  वांछनीय अलगाव उपलब्ध करवाने से प्राकृतिक संकरण से संदूषण को नियंत्रित किया जा सकता है।
- नयी फसल किस्में कभी-कभी बीमारियों की अन्य कई प्रजातियों के लिए सुग्राही हो जाती हैं और इस प्रकार वह बीज उत्पादन कार्यक्रम से निकाल दी जाती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि बीज उत्पादन के समय बीमारी रहित बीजों का उत्पादन किया जाये।
- आवश्यक आनुवंशिकी गुणों से रहित किस्म कुछ लक्षणों के लिए भिन्नता दर्शाने लगती है। ये परिवर्तन वातावरण के अनुकूलन से समाप्त हो सकते हैं, फिर भी इनसे हानि या लाभ हो सकते हैं। अत: इनका विशेष ध्यान रखना ज़रूरी है।

बीज उत्पादन, बीज की अच्छी गुणवत्ता एवं अधिक उपज लेने के लिए आनुवंशिकी सिद्धान्तों को अपनाया जाना ज़रूरी है। किसी भी किस्म की उत्पादन क्षमता एवं अन्य गुण उस किस्म के जीनोटाइप के द्वारा नियंत्रित होते हैं। सभी व्ययों की सहायता से किसान की अच्छी या खराब फसल इस बात पर निर्भर करती है कि उसने कौन सी किस्म का चयन खेती के लिए किया है। इसलिए बीज की गुणवत्ता किसान के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यदि अच्छी किस्मों का शुद्ध बीज है इसका मतलब है कि अच्छी फसल की कटाई करना परन्तु यदि अशुद्ध बीज है तो इसके कारण फसल से अनुमानित उत्पादन प्राप्त नहीं होगा एवं उत्पादन क्षमता कम हो जायेगी तथा बीमारी और कीड़ों की भी समस्या होगी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि नई किस्मों का बीज किसानों के पास शुद्ध एवं स्वस्थ अवस्था में ही पहुंचना चाहिए एवं इसको निश्चित करने के लिए हमारे देश में राष्ट्रीय बीज विकास निगम, प्रादेशिक बीज विकास निगम एवं कृषि विश्वविद्यालय, बीज प्रमाणीकरण के रूप में संगठित बीज उत्पादन संस्थाएं कार्यरत हैं। ये संस्थायें मुख्य: रूप से बीज प्रमाणीकरण, उत्तम बीज का उत्पादन एवं वितरण के लिए ज़िम्मेदार होती हैं।

(पृष्ठ 11 का शेष)

2. सल्फर का प्रयोग स्रोत्र की उपलब्धता एवं लागत के अनुरूप करना चाहिए। अत: प्रसार कार्यकर्त्ता, उर्वरक विक्रेता और कृषक इस बात को अच्छी तरह जान लें कि खेतों में सल्फर की कमी एक वास्तविक समस्या है और संतुलित उर्वरक देते समय कम से कम एक सल्फरयुक्त उर्वरक का समावेश अवश्य कर लें। जिससे खेतों में सल्फर की कमी को दूर किया जा सके। कार्बनिक खाद भी गंधक के साथ अन्य तत्वों का एक अच्छा स्रोत है।

तालिका : सल्फर के स्रोत्र

क. सं.	उर्वरक	सल्फर की मात्रा (%)
1	अमोनिया सल्फेट	24
2	अमोनिया सल्फेट नाइट्रेट	12
3	नार्मल सुपर फास्फेट	10-12
4	अमोनियम फास्फेट सल्फेट	15-40
5	पोटेशियम सल्फेट	17-18
6	पोटेशियम मैग्नेशियम सल्फेट	22
7	जिप्सम	18.6
8	कॉपर सल्फेट	12.8
9	फैरस सल्फेट	18.8
10	ज़िंक सल्फेट	17.8

(पृष्ठ 12 का शेष)

का समावेश व एकत्रण हो जाता है तथा वांछित तत्व अघुलनशील अवस्था में पहुंच जाते हैं। अत: किसानों को टयूबवैल के पानी की जांच साल में एक बार अवश्य करवानी चाहिए तथा अनुमोदित की गई सलाह के अनुरूप ही खेतों में पानी देना चाहिए।

फसल चक्र

किसानों को मृदा स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए दाल वाली फसलों को फसल चक्र में अवश्य शामिल करना चाहिए। इन फसलों की जड़ों में गुलाबी गांठें होती हैं और उन गांठों में मौजूद राइजोबियम बैक्टीरिया वातावरण की नाइट्रोजन को मिट्टी में स्थापित करते हैं। धान-गेहूं फसल चक्र में ढैंचा या मूंग की फसल को फूल आने की अवस्था में खेत में ही मिला देने से मृदा के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों में वांछनीय सुधार होता है।

आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें। **- सह-निदेशक (प्रकाशन)**

पोर्टेबल वर्मीकम्पोस्ट किट

✍ रवीना कारगवाल, यादविका एवं एम. के. गर्ग
प्रसंस्करण एवं खाद्य अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वर्मीकम्पोस्ट की समस्या को दूर करने के लिए चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार के कृषि अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय के प्रसंस्करण एवं खाद्य अभियांत्रिकी विभाग ने पोर्टेबल वर्मीकम्पोस्ट किट का निर्माण किया है। दो पोर्टेबल वर्मीबैड अक्षय ऊर्जा प्रयोगशाला में स्थापित किए गये हैं। जोकि उच्च घनत्व वाले पोली इथिन (एचडीपीई) से बने हुए हैं। इनकी क्षमता 1000 कि.ग्रा. है ।

पोर्टेबल वर्मीकम्पोस्ट किट के विभिन्न भाग

निकास द्वार : वर्मीवॉस संग्रह के लिए किट के नीचे एक निकास द्वार भी उपलब्ध कराया गया है । इस वर्मीवॉस को खेतों में खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

पोर्टेबल वर्मीकम्पोस्ट किट के मापदण्ड : यह 3.60 मीटर लंबे, 1.20 मीटर चौड़े और 0.60 मीटर गहराई के आकार के हैं।

वेंटिलेटर : हवा के आवागमन के लिए इन वर्मीकम्पोस्ट किट में 0.30 x 0.30 मीटर आकार के 6 वेंटिलेटर उपलब्ध कराये गये हैं।

वर्मीकम्पोस्ट किट के लाभ :

- वेंटीलेटर बेहतर हवा प्रदान करते हैं।
- यह ऑक्सीजन और नमी बनाए रखने में सहायक हैं जो कि केंचुए के लिए लाभदायक होता है।
- यह ज़मीन के ऊपर स्थापित होने के कारण चींटियों और चूहों से सुरक्षा प्रदान करता है।
- यह पोर्टेबल होने के कारण आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है।
- इस पर कोई भी आसानी से काम कर सकता है।
- यह सरल प्रबंधन प्रदान करता है।
- इसमें जगह का समायोजन पारंपरिक विधि से बेहतर किया जा सकता है।

वर्मीबैड का परीक्षण

वर्मीबैड को 2 सैं.मी. की गहराई तक मिट्टी से भरा गया था, फिर नीम के पत्तों की एक परत मिट्टी पर फैल कर उस पर स्ट्रॉ की डाली गयी थी। फिर वर्मीबैड को 4:1 (800 किलोग्राम पशुओं का गोबर और 200 किलो एसएमएस) के अनुपात में पशुओं के गोबर से भरा गया था । इसी प्रकार दूसरा अनुपात 2:1 (665 किलो पशुओं का गोबर और 335 किलो एसएमएस) में भरा गया था। बाद में प्रत्येक किट में 1-1 किलो केंचुए डाल दिए गये। खाद को वायु प्रदान करने के लिए नियमित रूप पर उल्टाई की गई थी। सीधे सूर्य की रोशनी को रोकने के लिए दोनों वर्मीबैड हरे रंग की नेट से ढके गये थे। खाद तैयार हो जाने के बाद पानी डालना बंद कर दिया गया ।

तालिका

क्र. संख्या	मापदंड	वर्मीकम्पोस्ट किट (2:1)	वर्मीकम्पोस्ट किट (4:1)
1.	ऑर्गेनिक कार्बन (%)	19.0	15.60
2.	नाइट्रोजन (%)	1.32	1.90
3.	फास्फोरस (%)	0.16	0.57
4.	पोटेशियम (%)	0.19	1.54
5.	कार्बन : नाइट्रोजन	15.32	9.17

बेटी बचाओ
बेटी पढ़ाओ

सौर ऊर्जा संचालित – टपका सिंचाई प्रणाली

✍ **प्रमोद शर्मा, कनिष्क वर्मा एवं वाई. के. यादव**
अक्षय ऊर्जा एवं जैव ऊर्जा अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत एक कृषि प्रधान देश है। हमारे देश की आधे से ज़्यादा आबादी कृषि व्यवसाय संबंधी गतिविधयों से जुड़ी हुई है। कृषि क्षेत्र में ऊर्जा और जल दो महत्वपूर्ण अंग हैं। एक सर्वेक्षण से पता चला है कि भारत में 22% गैर-अक्षय ऊर्जा (non-conventional energy) खपत और 80% पानी का उपयोग अकेले कृषि क्षेत्र में होता है। भारत में कृषि कार्यों में प्राय: डीज़ल या विद्युत पंप सेट का उपयोग किया जाता है जो कि आज के समय प्रतिदिन महंगा हो रहा है। डीज़ल या विद्युत संचालित पंप पर्यावरण में वायु और ध्वनि प्रदूषण को बढ़ाते हैं। जिसका नकारात्मक प्रभाव मनुष्यों के स्वास्थ्य पर पड़ता है। दूसरी ओर हम पाएंगे कि किसान अभी भी सिंचाई के लिये परम्परागत विधियों का उपयोग कर रहे हैं। जिससे पानी की क्षति अधिक व सिंचाई की दक्षता कम रहती है। भारत एक विकासशील देश होने के कारण ऊर्जा और जल के अपव्यय को रोकना बहुत ज़रूरी है। कृषि क्षेत्र में इन दोनों के अपव्यय को रोकने के लिये सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई प्रणाली एक बहुत ही अच्छी तकनीक है। इस तकनीक के प्रयोग से हम ऊर्जा के साथ-साथ जल के अपव्यय को भी कम कर सकते हैं।

सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई दो तकनीकों का मिलान है, अर्थात सौर ऊर्जा संचालित पंप और टपका सिंचाई प्रणाली। सौर ऊर्जा संचालित पंप उन कृषि क्षेत्रों में बहुत ही उपयोगी है, जहाँ पर विद्युत् के जाल स्थापित नहीं हैं। दूसरी ओर टपका सिंचाई प्रणाली का उपयोग हम उन क्षेत्रों में भी कर सकते हैं, जहाँ पर भू-जल में नमक या क्षार की मात्रा हो। टपका सिंचाई प्रणाली में पानी और उर्वरक की बूँद-बूँद सीधे पौधों की जड़ों में जाती है, जिससे पानी व उर्वरक का अपव्यय कम होता है। यह प्रणाली कृषि की पैदावार को भी बढ़ाती है।

सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई प्रणाली के मुख्य घटक

सौर पेनल : सौर पेनल बहुत छोटी-छोटी सौर सैलों से मिलकर बना है। इसमें अर्धचालक (सेमीकंडक्टर) लगे होते हैं। अर्धचालक फोटोवोल्टिक प्रभाव उत्पन्न करके प्रकाश ऊर्जा को विद्युत् ऊर्जा में परिवर्तित करता है। सौर पेनल के लिये मोनोक्रिस्टलाइन सिलिकॉन, पॉलीक्रिस्टलाइन एवं कैडमियम टेलुराइड आदि का प्रयोग किया जाता है।

मॉउंटिंग संरचना : सौर ऊर्जा प्रणाली में सौर पेनल को दो प्रकार से लगा सकते हैं : (1) निश्चित संरचना (2) ट्रैकिंग संरचना

निश्चित संरचना में सौर पेनल फिक्स होते हैं। निश्चित संरचना वाले पेनल कम महंगे तथा उच्च वेग वाली वायु को भी सहन कर लेते हैं। दूसरी ओर ट्रैकिंग संरचना में सौर पैनल को आसानी से सूरज की दिशा में कर सकते हैं। ट्रैकिंग संरचना निश्चित संरचना की तुलना में 25% ज़्यादा पानी देती है। लेकिन ट्रैकिंग संरचना थोड़ी महंगी होती है।

पंप : सौर ऊर्जा से चलाने के लिये आल्टरनेट करंट या डायरेक्ट करंट पंप का उपयोग किया जाता है। सौर ऊर्जा चलित पंप तीन प्रकार के होते हैं : (1) विस्थापन पंप (2) केन्द्रापसारक पम्प (3) पनडुब्बी पंप। जिसमें पनडुब्बी पंप सबसे ज़्यादा इस्तेमाल किए जाते हैं।

फिल्टर यूनिट : इस यूनिट में पानी को छानने की व्यवस्था होती हैं, जिससे कि टपका सिंचाई प्रणाली के कार्यकलाप में कोई बाधा उत्पन्न न हो।

फर्टिगेशन यूनिट : सिंचाई वाले पानी में तरल खाद मिलाने की व्यवस्था। जिससे सिंचाई के साथ-साथ ही खाद का प्रयोग सम्भव है।

दाबमापी : टपका सिंचाई प्रणाली पानी के दाब को दर्शाता है, क्योंकि टपका सिंचाई के लिए दाब का महत्वपूर्ण योगदान है।

मैन लाइन : मैन लाइन द्वारा पंप से सबमैन में पानी की सप्लाई की जाती है।

सबमैन : सबमैन द्वारा लेटरल में पानी की सप्लाई की जाती है।

लेटरल : लेटरल कम व्यास वाली पाइप होती है जो कि एमिटर या ड्रिपर को पानी की सप्लाई करती है।

ड्रिपर : ड्रिपर पानी को पौधों के जड़ क्षेत्र में बूँद-बूँद पानी सप्लाई करते हैं तथा इसी से पानी की काफी बचत भी होती है।

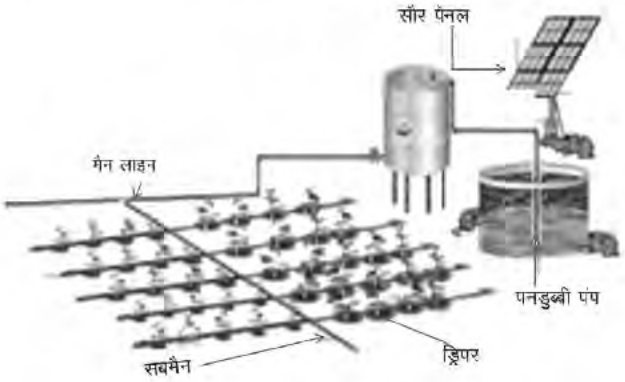

सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई प्रणाली

सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई प्रणाली के लाभ

1. सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई में जल उपयोग दक्षता 90-95% तक होती है।
2. सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई में उतने ही जल एवं उर्वरक की आपूर्ति की जाती है जितनी फसल के लिए आवश्यक होती है। अत: इस सिंचाई विधि में जल के साथ-साथ उर्वरकों की अनावश्यक बर्बादी को रोका जा सकता है।
3. इस सिंचाई विधि से सिंचित फसल की तीव्र वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप फसल शीघ्र परिपक्व होती है।
4. सौर ऊर्जा संचालित टपका विधि खर-पतवार नियंत्रण में अत्यन्त ही

(शेष पृष्ठ 28 पर)

जल भराव : समस्या एवं समाधान

✍ **नरेंद्र कुमार, प्रमोद शर्मा एवं संजय कुमार**
कृषि अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जल स्तर का पौधों की जड़ों तक ऊपर आ जाना जल भराव कहलाता है। इसका पौधों के विकास पर सीधा प्रभाव पड़ता है। मृदा में उपस्थित ऑक्सीजन की कमी के कारण पौधों का विकास रुक जाता है। यदि जल स्तर 3 मीटर से नीचे हो तो सुरक्षित माना जाता है। 1.5 मीटर तक मध्यम व इससे ऊपर गंभीर समस्या के रूप में माना जाता है। इसमें जल 0–30 सेंटी मीटर तक या सतह पर एकत्रित हो जाता है । भारत में 700000 हैक्टेयर क्षेत्र जल भराव की समस्या से ग्रसित है। जल भराव भूमि को बंजर बना देता है। मानसून के समय बारिश इतनी अधिक हो जाती है कि खेतों में जल भराव की स्थिति हो जाती है। जिस से फसलों को भारी नुकसान पहुंचता है। इस के कारण उत्पादन में भारी गिरावट आती है। जिस से किसानों की आय पर सीधा असर पड़ता है। जल भराव के कारण किसानों की खेतों में रखी हुई तूड़ी एवं जानवरों के लिए संरक्षित किया हुआ भूसा भी खराब हो जाता है। बहुत सी फसलें जल भराव के प्रति बहुत संवेदनशील होती हैं।

जल भराव के कारण

1. जल संसाधनों से रिसाव : किसी क्षेत्र के पास से जाने वाली नहर या नदी के जल रिसाव के कारण आस–पास के क्षेत्रों का जल स्तर ऊपर आ जाता है। यह जल स्तर पौधों की जड़ों तक या सतह तक आ जाता है। इसका एक अच्छा उदाहरण इंदिरा गाँधी नहर परियोजना है। नहर परियोजना शुरू होने से पहले जल स्तर 15 से 40 मीटर था। परियोजना खत्म होने के बाद यह 6 से 1.5 मीटर तक आ गया। 1.5 मीटर जल स्तर को हम गंभीरता से लेते हैं। इस नहर के कारण, 1980 में 742 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र जल भराव से ग्रसित था। 2000 में यह 3960 वर्ग किलोमीटर हो गया।

2. प्राकृतिक संरचना : किसी भी क्षेत्र की संरचना, मृदा एवं ढाल, उस क्षेत्र में जल भराव को निर्धारित करते हैं। यदि क्षेत्र की संरचना कटोरे के आकार की है, तो वहाँ आस–पास के क्षेत्रों से जल एकत्रित होगा। चिकनी मिट्टी में केपिलरी राइज़ के कारण जल ऊपरी सतह तक आ जाता है। यदि ढाल कम होगा तो पानी की निकासी भी कम होगी।

3. कठोर सतह का होना : यदि मिट्टी के नीचे कोई कठोर सतह होगी तो, बरसात एवं सिचाई का जल ऊपरी सतह तक ही रहेगा। यह कठोर सतह पानी के बहाव में अवरोध पैदा करेगी। जल इस कठोर सतह पर एकत्रित हो जायेगा। जिससे जल भराव की समस्या पैदा होगी।

4. बार–बार एवं अधिक सिंचाई करना : किसी भी क्षेत्र में बार–बार व अधिक सिंचाई करने से जल स्तर ऊपर आता है। बार–बार सिंचाई करने से जल मृदा की प्रोफाइल में इकट्ठा हो जाता है। यह पौधों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

5. आवश्यकता से अधिक पानी लगाना : किसी वर्ष में मानसून की अच्छी बरसात के बाद भी क्षेत्र में पानी लगाना जल भराव का कारण हो सकता है। बरसात की वजह से पहले ही मिट्टी पानी से तर होती है, ऊपर से सिंचाई करने से पानी सतह पर खड़ा ही रहता है। यह जल भराव की समस्या को जन्म देता है।

6. कृषि प्रबंधन व फसलों का चुनाव : फार्म प्रबंधन के गलत तरीके व गलत फसलों के चुनाव के कारण भी जल भराव की समस्या जन्म लेती है। किसी सीज़न में किसान ने अधिक पानी की ज़रूरत वाली फसल उगाई हो और उसके बाद फिर से वह अधिक पानी की ज़रूरत वाली फसल लेता है तो यह एक गलत प्रबंधन का उदाहरण है। इससे जल स्तर ऊपर आयेगा और जल भराव की समस्या होगी।

7. ऊँची जगहों से पानी का नीचे वाली जगहों में रिसाव : कोई क्षेत्र यदि किसी ऊँची जगह के पास हो, जहाँ कृषि की जाती हो। उस जगह का पानी रिस कर नीचे वाले क्षेत्र के जल स्तर को बढ़ाता है।

8. जल निकासी तंत्र का न होना : ऐसा क्षेत्र जहां पानी की कोई समस्या न हो, जल निकासी तंत्र ज़रूर होना चाहिये। इसकी अनुपस्थिति के कारण वहाँ सिंचाई का व बरसात का जल इकट्ठा हो जाता है।

जल भराव के नुकसान

जल भराव कई तरह के तरीकों से भूमि व पैदावार को प्रभावित करता है :

1. रूट ज़ोन में एनोरोबिक हालत : मृदा में कई तरह की बायोलॉजिकल क्रियाएं होती हैं। इन क्रियाओं के कारण मृदा में नाइट्रोजन बनती है। अत्यधिक नमी के कारण ये क्रियाए नहीं हो पातीं। जिससे पौधों को आवश्यक भोजन नहीं मिल पाता। जिसके कारण पौधों की वृद्धि बुरी तरह से प्रभावित होती है।

2. जंगली पौधों का उगना : कुछ जंगली पौधे अधिक पानी में उगते हैं। जल भराव उनको एक बेहतर वातावरण देता है। जिसके कारण खेत में कई तरह के जंगली पौधे उग जाते हैं। ये पौधे हमारी फसलों के लिए हानिकारक होते हैं। इससे हमारी पैदावार में भी गिरावट होती है।

3. टिलेज में कठिनाई : जलभराव की समस्या वाले क्षेत्रों में टिलेज ऑपरेशन में कठिनाई होती है। मिटटी में अत्यधिक नमी के कारण मशीनें उस में अच्छे से नहीं चल पातीं। इस तरह से खेत बुवाई व अन्य गतिविधियों के लिए अच्छे से तैयार नहीं हो पाते।

4. नमक का संचय : जलभराव के कारण रूट ज़ोन में विषाक्त लवण आ जाते हैं। इसकी वजह से मिट्टी क्षारीय हो जाती है, जो कि फसल की वृद्धि में बाधा डालती है।

5. मृदा तापमान को कम करना : अत्यधिक नमी के कारण मृदा का तापमान कम हो जाता है। कम तापमान बायोलॉजिकल क्रियाओं को कम कर देता है जिससे मृदा में नाइट्रोजन कम बनता है और पौधों का विकास कम होता है।

6. परिपक्वता समय का जल्दी आना : फसलों की समय से पहले परिपक्वता जल प्रबंधित भूमि की विशेषता है। फसलों के समय से पहले परिपक्व होने के कारण पैदावार में कमी होती है।

7. फसलों में बीमारी आना : जल भराव की स्थिति में पौधों की जड़ें सदा पानी में डूबी रहती हैं। जिससे वे सड़ जाती हैं या दीमक लग जाती है। जल भराव में पौधों पर तरह-तरह के कीट पतंगे लग जाते हैं। जो पौधों के विकास और पैदावार को बुरी तरह प्रभावित करते हैं।

8. सीमित फसलों का चुनाव : जल भराव वाले क्षेत्रों में फसलों का चुनाव बहुत ही सीमित हो जाता है। हमें केवल उन फसलों का चुनाव करना पड़ता है, जिनकी जड़ें कम गहरी हों और इस तरह के वातावरण में जीवित रह सकें।

जल भराव रोकने के तरीके

1. रिसाव को रोकना : नहरों की सतहों को पक्का करके व नहर और खेतों के बीच में इंटरसेप्टर बना कर, नहरों से रिसने वाले पानी को खेतों में पहुंचने से रोका जा सकता है। नहरों के साथ-साथ खेतों में आने वाली छोटी माइनरों को भी पक्का करना चाहिए। नहरों के किनारों पर ऐसे पौधे लगाने चाहिएं जो उनके किनारों को मज़बूती देने के साथ-साथ जल स्तर को भी नीचे बनाए रखें।

2. खेतों में सिंचाई का उचित प्रबंधन : खेतों मे पानी उचित मात्रा में लगाना चाहिए। इस से पानी नीचे नहीं जायेगा और जल स्तर में वृद्धि नहीं होगी। कम मात्रा में जल और कई बार सिंचाई करना भी एक उचित प्रबंधन है। खेत को छोटे- छोटे क्षेत्रों में बांटकर सिंचाई करनी चाहिए। इस से सिंचाई में कम पानी लगेगा और जल भराव की समस्या भी नहीं होगी।

3. बरसात के पानी को जल्दी निकालना : बरसात के पानी को निकालने का उचित प्रबंध होना चाहिए। लम्बे समय तक पानी खड़ा रहने से जल स्तर में वृद्धि होगी। बरसात का पानी अधिक समय तक खड़े रहने के कारण फसलों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

4. जल निकासी तंत्र : जल निकासी तंत्र जल भराव की समस्या से निजात पाने में बहुत अहम् भूमिका अदा करता है। यह खेतों से पानी को सुरक्षित तरीके से निकाल देता है। जल निकासी तंत्र ने बहुत सी जल भराव ज़मीनों को सुधार कर फसल लेने योग्य बना दिया है।

5. ट्यूब वेल से सिंचाई : उन क्षेत्रों में जहां पानी का स्तर ऊपर हो वहाँ ट्यूब वेल से सिंचाई को बढ़ावा देना चाहिए। लोगों को ट्यूब वेल से सिंचाई के फायदे बताकर, उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। इस से जल स्तर नीचे होगा।

6. बायो ड्रेनेज : कई पौधों को दिन में कई लीटर पानी की आवश्यकता होती है। सफेदा भी उनमें से एक है। सफेदा एक दिन में कई लीटर पानी का उपयोग करता है। इस तरह के पौधों को बड़े पैमाने पे लगा कर जल स्तर को नीचे किया जा सकता है।

केंचुओं पर धातुओं के प्रभाव

✍ **शेफाली एवं आर. के. गुप्ता**
प्राणी विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मृदा एक गतिशील और जटिल प्रणाली है जो सूक्ष्मजीवों, पौधों, जानवरों और मनुष्यों को आवास प्रदान करती है। आजकल दूषित मिट्टी एक प्राथमिक समस्या बन गयी है जो भूजल प्रदूषण और रासायनिक यौगिकों के बायोमैग्निफिकेशन के माध्यम से खाद्य जल और कभी-कभी मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। प्राकृतिक और मानववंशीय गतिविधियों दोनों के कारण होने वाली धातु संदूषण, दुनिया भर में प्रमुख चिंता का विषय है। धातु सामग्री में वृद्धि मिट्टी के पारिस्थितिक तंत्र की गतिविधियों को बाधित करके मिट्टी की पारिस्थिति तंत्र के कामकाज पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है।

स्थलीय अपरिवर्तक के 80% से अधिक बायोमास केंचुओं से बना है। केंचुओं का मिट्टी के साथ विशेष रूप से घनिष्ठ संपर्क हैं, और वे कार्बनिक पदार्थ का अपघटन करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन कारणों से, केंचुओं का व्यापक रूप से उपयोग किया गया है पारिस्थितिकीय मिट्टी के अध्ययन में। अपने प्राकृतिक आवास में केंचुआ धातुओं के बढ़ते स्तर के संपर्क में आ जाता है जिसके स्रोत औद्योगिक और ऑटोमोबाइल उत्सर्जन हैं। केंचुए धातु प्रदूषण निगरानी में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त हैं। उनके क्लोरागोजेन्स ऊतकों में धातुओं के जैव संचय के लिए एक निहित क्षमता है और मिट्टी के प्रदूषण के पारिस्थितिक संकेतक के रूप में उपयोग किया जा सकता है। कई अध्ययन आयोजित किए गए और उनके अनुसार विभिन्न धातुओं के नकारात्मक प्रभावों की सूचना इन केंचुआ प्रजातियों पर दी गयी है : ईसेनिया फेतिदा, लुम्ब्रिकुस रूबेलस, फेरेतिमा गिलेल्मी, ड्राइडा रामनादन और लैम्पिटो मॉरीति।

खाद्य शृंखला के भीतर धातुओं का जैव संचय हो सकता है जिससे केंचुओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव न हो, लेकिन उच्च उष्णकटिबंधीय स्तर पर गंभीर नुकसान हो सकता है। इसलिए, केंचुओं के विषाक्तता अध्ययन का उपयोग पर्यावरण में रसायनों के लिए सुरक्षा दहलीज प्रदान करने के लिए

(शेष पृष्ठ 28 पर)

पारंपरिक प्रथा से अनाज भण्डारण

✍ पूजा, एस. एस. ढांडा एवं दीपिका राठी
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत में अनाज और तिलहन की फसलों में 10 से 20 प्रतिशत तक का नुकसान अनुमानित है। सरकारी रिकॉर्ड के अनुसार, अकेले साल 2010 में सरकारी गोदामों में 11,700 टन भण्डारित खाद्यान्न सड़ जाने से भारत को भारी आर्थिक नुकसान पहुँचा है। अनाज की खपत की भारी माँग और उसके महत्व को ध्यान में रखते हुए अनाज के उचित भंडारण को नकारा नहीं जा सकता। सुरक्षित भण्डारण के लिये कई पारम्परिक प्रथाएँ काफी किफायती और वातावरण के अनुकूल हैं। घरेलू स्तर पर सुरक्षित भण्डारण एक ज़रूरी प्रक्रिया है, क्योंकि कीटों एवं सूक्ष्म जैविक कारक खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता एवं पौष्टिकता में भारी कमी का मुख्य कारण है। इसके साथ-साथ ये कारक अनाज की मात्रा में भी भारी कमी लाते हैं। कीटों और जैविक कारक अपने विषाक्त पदार्थों को उत्पादित कर और अपने मल-मूत्र से लोगों के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव डालते हैं।

अनाज भंडारण कीटों के प्रकार

कवक : कवक एक कोशिकीय बीजाणु है जिनमें जनन स्वत: ही होता है। इसलिए इनके बीजाणुओं को पर्यावरण की पहुंच से दूर रखा जाना चाहिए ताकि ये भंडारित अनाज को संक्रमित न कर सकें। भंडारित अनाजों में कवक संक्रमण की अवस्था को पहचानना मुश्किल है। संक्रमण का फैलाव बीजाणुओं द्वारा होता है जो वातावरण में मौजूद हवा और कीटों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलते है। दाने का कालापन और तीखी गंध, कवक संक्रमण से मुख्य पौष्टिकता में भी भारी कमी आती है। भण्डारित स्थान पर उमस और नमी का होना कवक संक्रमण का प्रमुख कारण है। अनाज को कवक के संक्रमण से बचाने के लिए पूरी तरह सुखा कर भंडारण करना ही उचित माना जाता है।

कीट : भृंग और पतंग दो मुख्य प्रकार के कीट होते हैं जो भण्डारित दालों और अनाजों को नुकसान पहुंचाते हैं। कीटों को ज़िंदा रहने के लिए आवश्यक सभी शर्तें भंडार गृह में अच्छी तरह से मौजूद होती हैं। दोनों के बच्चों को पहचानना बहुत ही मुश्किल होता है क्योंकि ये बहुत छोटे बीज के समान आकृति वाले होते हैं जो कि बीजों के अंदर रहकर नुकसान पहुंचाते हैं। टूटे हुए बीजों को भण्डारित करने से कीटों व कीड़ों को बुलावा मिलता है। इसलिए कभी भी साबुत बीजों के साथ टूटे हुए बीजों को भण्डारित न करें।

चूहे : भंडारित अनाज को नुकसान पहुंचाने में चूहे भी एक प्रमुख कारण हैं। चूहे जूट के बने हुए थैलों में आसानी से छेद करके बीजों को काफी नुकसान पहुंचा देते हैं जिससे खाद्य पदार्थ की गुणवत्ता में कमी आने से अनेक प्रकार की हानिकारक बीमारियां फैलती हैं। चूहों की रोकथाम पिंजरों का प्रयोग कर व रासायनिक उपचार दोनों प्रकार से किया जा सकता है परन्तु पिंजरे का प्रयोग करना अधिक सार्थक माना जाता है।

परंपरागत तरीकों द्वारा अनाज का किफायती व सुरक्षित भंडारण : स्थानीय रूप से उपलब्ध पौधे और उनके उत्पादों से अनाजों का सुरक्षित भंडारण पुराने समय से इस्तेमाल में लाया जाता रहा है। आधुनिक तौर तरीकों की तुलना में परंपरागत तौर तरीके अधिक सस्ते एवं आसानी से उपलब्ध हैं। प्रकृति ने मानव को कई औषधि व निरोगी गुणवाली जड़ी बूटियां वनस्पति के रूप में प्रदान की हैं। जैसे - नीम, हल्दी, तुलसी इत्यादि। यहां उन्हीं उत्पादों का उपयोग अनाज के सुरक्षित भंडारण के लिए किया गया है।

1. धूप में सुखाकर : यह भंडारण की बहुत आसान एवं टिकाउ विधि है। लंबे समय से इसका प्रयोग अनाज में नमी, कीटों के प्रजनन में रोकथाम के लिए किया जाता रहा है। इस विधि में कटाई के बाद अनाज को धूप में सुखाकर लंबे समय के लिए उसे भंडारित कर देते हैं। इससे कीटों में होने वाली प्रजनन किया रुक जाती है। यह विधि बड़े एवं छोटे दोनों स्तर के किसानों के लिए बहुत लाभदायी व प्रभावी है। यह प्रकिया अप्रैल, मई व जून के महीने में एक करने से किसी भी प्रकार के कीड़ों और कीटों पर काबू पाया जा सकता है।

2. नीम की पत्तियों का इस्तेमाल कीटों व कीड़ों की रोकथाम के रूप में : नीम की पत्तियों का इस्तेमाल कीटों व कीड़ों को भंडारित अनाज से दूर भगाने के लिए किया जाता रहा है। इसके लिए पेड़ से ताज़ी पत्तियों को जमा कर उन्हें छाया में सुखाकर रखा जाता है। सीधे अनाज के साथ मिलाकर, अनाज की पेटी को बंद कर दिया जाता है। यह विधि बहुत ही सस्ती, सुरक्षित एवं प्रभावी है। रागी को भण्डारित करने के लिए दक्षिणी भारतीय किसानों द्वारा नीम की पत्तियों का इस्तेमाल कर कीटों व कीड़ों से सुरक्षा के लिए किया जाता है।

3. हल्दी : एक किलो अनाज में 40 ग्राम हल्दी का चूर्ण का भी उपयोग एक अच्छे विकल्प के रूप में किया जाता है। भंडारण में पहले अनाज को हल्दी के चूर्ण के साथ हल्के हाथ से रगड़ कर आधे घंटे के लिए धूप में सुखा देते हैं। कच्ची हल्दी का इस्तेमाल भी कीटों से सुरक्षा के लिए किया जाता है। इसकी तेज़ गंध एवं नाशकजीव रोधीगुण के कारण कीट अनाज से दूर रहते हैं। यह उपचार कीटों से लम्बे समय तक सुरक्षा प्रदान करता है और खाने की दृष्टि से भी सुरक्षित है।

4. चूना का प्रयोग कर उपचार करना : चूना नाशकजीवों को नियंत्रित करने के लिए बहुत पहले से ही प्रयोग में लाये जाने वाली विधि है। यह बहुत ही सस्ता एवं आसान उपाय है। नाशकजीवों को नियंत्रित करने के लिए इस विधि में चूने का चूर्ण बनाकर उसे चावलों के साथ मिला दें। फिर जूट से बने थैले में डालकर सूखे स्थान पर रख दें। इसकी महक से कीड़े दूर भाग जाते हैं और उसकी प्रजनन प्रक्रिया को भी रोक देते हैं। साधारणत: 10 ग्राम चूने का इस्तेमाल 1 किलोग्राम अनाज को उपचारित करने में किया जाता है। यह उपचार नाशकजीवों के आक्रमण से लंबे समय तक बचाता है।

5. राख द्वारा नाशकजीवों का नियंत्रण : यह विधि नियमित रूप से किसानों द्वारा पुराने समय से इस्तेमाल में लाई जा रही है। इस विधि में दालों को भण्डारित करने के लिए मिट्टी से बने घड़े के अंदर 3/4 भाग राख व बाकी बचे एक चौथाई भाग में गाय का गोबर और लकड़ी की राख से भरकर बंद कर दें। छ: महीने के बाद यह विधि फिर से दोहराएं। अनाज को भी इसी प्रकार गाय के गोबर की राख के साथ मिलाकर भण्डारित करते हैं जो कीटरोधी है।

6. कीटों व कीड़ों से बचाव के लिए माचिस की डिब्बियों का उपयोग : ग्रामीण महिलाओं द्वारा अनाज को भण्डारित करने में यह विधि बहुत पहले से इस्तेमाल मे लाई जा रही है। इस विधि में सामान्यत 6 से 8 माचिस की डिब्बियों को अनाज की पेटी की सतह में, बीच में व ऊपरी हिस्से में रखकर उसे अच्छे से बंद कर देते हैं। माचिस की तीलियों में फास्फोरस होता है जो कीड़ों के संक्रमण की रोकथाम में सहायक होता है।

6-8 माचिस से अधिक मात्रा प्रयोग में हानिकारक है।

7. नीम के घोल द्वारा उपचारित जूट से बने थैलों का उपयोग : अनाज का सुरक्षित भण्डारण करने के लिए जूट से बने थैले बड़ी मात्रा में उपयोगी हैं। भण्डारण से पहले थैलों को नीम के घोल से उपचारित किया जाता है।

भंडारण : कीड़ों की रोकथाम के लिए फसल उत्पादों का इस्तेमाल

नीम के बीज द्वारा प्राप्त उत्पाद : 10 प्रतिशत नीम के बीज से घोल तैयार करने के लिए 1 कि.ग्राम. या नीम के बीजों का चूर्ण एवं 10 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। कपड़े की पोटली में 1 ग्राम नीम के बीज का चूर्ण बनाकर उसे 10 लीटर पानी में सारी रात डूबो कर रखें। अगले दिन पोटली को निचोड़ कर पानी का इस्तेमाल नीम के घोल के रूप में करें। जूट से बने थैले को उपचारित करने के लिए उसे आधे घंटे के लिए नीम के घोल में डाल दें। थैलों को हमेशा छाया में ही सुखायें।

नीम के तेल का उपयोग : घरेलू एवं परंपरागत तौर पर नीम के तेल का उपयोग किसानों द्वारा बीजों को उपचारित करने में किया जाता है। एक कि.ग्रा. अनाज को उपचारित करने के लिए 20 मि.ली. नीम का तेल काफी है। नीम का तेल भृंग, घुन, लाल सुरी, सफेदलंबे सिरवाली सुरी और पतंगे इत्यादि की रोकथाम में सहायक है।

भंडारण कीटों की रोकथाम के अन्य उपाय

ढाँचे को साफ एवं मुरम्मत रखें : ढाँचे को हमेशा साफ एवं सही तरीके से ही उपचार करें। गर्मी के महीनों में कीड़े ठण्ड की तुलना में ज़्यादा क्रियाशील होते हैं। इसलिए भण्डारण से पूर्व गर्मी के मौसम में सही तरीके से इसे पूरी तरह से उपचारित करें। भंडारण में होने वाली दरारों एवं छिद्रों की पूरी तरह से तुरन्त मुरम्मत या बंद करवा देना ही सही होता है। पुराने अनाज को स्थान परिवर्तन करते समय उसे सही तरीके से जांचना चाहिए। यदि अनाज सवंमित है तो उसे जल्द ही उपचारित करें।

केवल साफ एवं सूखे अनाजों का ही भण्डारण करें : अनाज के टुकड़े, धूल एवं भूसा, कीड़ों को अपनी तरफ आकर्षित करते हैं एवं कीड़ों के प्रजनन में सहायक होते हैं। लम्बे समय तक भण्डारण को देखते हुए अनाज को सही एवं समुचित तरीके से धूप में सुखाकर, साफ करके ही भण्डारित करें।

विशेष स्वच्छता : इस बात का विशेष ध्यान रखें कि भंडारण से पहले भण्डारण ढांचा तथा यंत्र जैसे ट्रंक आदि विशेष रूप से साफ हो। कोई भी पहले से पड़ा हुआ अनाज इत्यादि न हो।

अनाजों का नियमित निरीक्षण : नियमित देख-रेख भण्डारण प्रक्रिया का अति महत्वपूर्ण प्रयास और सही दिशा में कदम है।

निष्कर्ष : खाद्य पदार्थों की सही गुणवत्ता को घरेलू स्तर पर बनाए रखने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि भण्डारण के विभिन्न वैज्ञानिक तरीकों को अपनाया जाए। ये सभी प्रयास सामग्री एवं विधि केवल भण्डारण के उद्देश्य से है परंतु प्रति वर्ष उपलब्ध होने वाला खाद्य सामग्री भण्डारण तभी संभव है जब भण्डारण घरेलू स्तर पर सही तरीके से हो और उनका भविष्य में इस्तेमाल वाणिज्यिक उद्देश्य से हो। इसलिये पर्यावरण अनुकूल, सुरक्षित और प्रभावी भण्डारण को प्रोत्साहित किये जाने की आवश्यकता है। उपयुक्त सारे प्रयास को पुन: नये सिरे से अपनाकर उन्हें और प्रभावी बनाने की आवश्यकता है जिससे भविष्य में आने वाली पीढ़ी लाभान्वित हो।

(पृष्ठ 24 का शेष)

सहायक होती है क्योंकि सीमित नमी सतह के कारण खरपतवार कम उगते हैं।

5. जल की कमी वाले क्षेत्रों के लिए यह सिंचाई विधि अत्यन्त ही लाभकर होती है।
6. टपका सिंचाई में अन्य सिंचाई विधियों की तुलना में जल दक्षता अधिक होती है।
7. इस सिंचाई विधि से जल के भूमिगत रिसाव एवं सतह बहाव से हानि नहीं होती है।
8. सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई प्रणाली प्रदूषण से मुक्त तथा अक्षय ऊर्जा का उपयोग है।
9. सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई प्रणाली में रखरखाव की लागत बहुत कम है।

निष्कर्ष

सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई प्रणाली किसानों के लिये एक बहुत ही श्रेष्ठ विकल्प है, जो बिजली व पानी दोनों की बचत करता है। व साथ ही अक्षय ऊर्जा का भी उपयोग करता है। यह प्रणाली दूर दराज गांवों के लिये बहुत उपयोगी व धूप वाले दिनों के दौरान सबसे प्रभावी है। यह प्रौद्योगिकी किसान की आय के साथ-साथ प्रदूषण से होने वाली बीमारियों के खर्चों को बचाने में भी मदद करती है। 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने का जो लक्ष्य हमारे देश की वर्तमान सरकार ने रखा है,सौर ऊर्जा संचालित टपका सिंचाई प्रणाली प्रौद्योगिकी उपर्युक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये मील का पत्थर साबित होगी।

(पृष्ठ 26 का शेष)

किया जा सकता है। मिट्टी में धातुओं की उच्च सांद्रता केंचुओं की घनत्व, व्यवहार्यता, कोकून उत्पादन, यौन विकास को प्रभावित कर सकते हैं। धातुएं केंचुओं की मृत्यु दर का कारण बनती हैं और जनसंख्या के आकार, बचाव और प्रजातियों की विविधता को प्रभावित करती हैं। प्रदूषण की बहुत कम सांद्रता में एक्सपोज़र केंचुओं में व्यवहार प्रतिक्रिया कर सकते हैं। मिट्टी और जल मीडिया में धातुओं के लिए केंचुओं की विभिन्न प्रजातियों के संपर्क में प्रतिक्रिया के जवाब में व्यावहारिक प्रतिक्रियाएं और आकार के लक्षण निम्नानुसार हैं: शरीर का घुमाव, कोइलिंग, धीमी और तेज़ गति, शरीर को छोटा करना, शरीर की लम्बाई, कोलोमिक तरल पदार्थ का बाहर निकलना, प्रीक्लिटलर सूजन और शरीर का कसना।

धातु बायोडिग्रेडेबल नहीं है और लगभग असीमित जीवनकाल और असीमित पुनर्नवीनीकरण की संभावना रखता है। हालांकि, धातु प्रदूषण, जो सार्वजनिक स्वास्थ्य और टिकाऊ विकास के लिए भी अधिक जोखिम पैदा करता है, हम जानते हैं कि धातुओं का केंचुओं पर इतना नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, इसलिए हमें इसका सावधानी से उपयोग करना चाहिए ताकि धरती के साथ-साथ पर्यावरण को नुकसान न पहुंचे।

Rohida : Marwar Teak of Thar Desert

✍ **Sandeep Arya, Neeraj Kumar[1] and Naresh Kaushik**
Department of Forestry
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Tecomella undulata (Smith) Seeman, a member of the family *Bignoniaceae*, is one of the co-dominant species in the desert forests of western Rajasthan and adjoining lands of Haryana alongside *Prosopis Cineraria* (Khejri).

It is commonly known as rohida and rugtora in Hindi, ammora in English, rohira or luar or lahura in Punjabi and is locally known as honey tree, desert teak, white cedar, marwar teak or Rajasthan tak.

It is widely distributed in Arabia, southern Pakistan and north-west India upto an elevation of 1200 meters. In India, it occurs naturally in Rajsthan, Punjab, Haryana, Gujarat and Maharashtra. It is also distributed in sub-Himalyan tract from gonad (Uttar Pradesh), eastward to Bengal, Sikkim and Assam west, in western ghat and Andmans.

In western Rajasthan, it occurs in areas of Sikar, Churu, Jhunjhunu, Rattangarh, Chappar, Bidhasar, Nokha, Jasrasar, Nagaur, Sadulpur, and Bikaner. It has also been reported in the Mogra and Harikhala localities of Jodhpur, Devabas of Jalore and Kasthari, Sivana Faludi, Rawatsar, Chohtan, Porarian and Kharia Kalan areas of the Barmer district. Rohira occurs in various localities of southern Haryana, namely, Bhiwani, Tosham, Dadri, Kanina, Mohindergarh and Bawal.

It occurs on flat and undulating areas including gentle hill slopes and sometimes also in ravines. It is well adapted to drain loamy to sandy loam soil having pH 6.5- 8.0. The species thrives very well on stabilized sand dunes, which experience extreme low and high temperatures. It grows in areas of scanty rainfall (annual 150-500 mm) and high temperature (35° to 48°C). It can withstand extreme low temperature (0° to - 2°C) during winter and high temperature (48° to 50°C) in summers. The tree is a strong light demander. It is drought, frost, fire and wind hardy.

It is noted among the desert dwellers for its high quality timber and medicinal value. Indiscriminate felling for timber and fuel coupled with poor regeneration have severely depleted the natural population of this valuable tree.

Morphology : Rohira is an evergreen large shrub or small tree with dropping branches and curved trunk. It attains a height of 4 to 8 m, a circumference of 50-87 cm and is extremely slow growing with a deep root system. The leaves are thick, greyish, coriaceous, alongwith a prominent mid rib and obtuse to refuse apex. Defoliation occurs from the first week of November and continues until the end of March. New leaves appear from February onwards and there is never complete leaf shed. At the time of flowering (December-February), it produces beautiful showy large, pale yellow to deep orange or red flowers born in axillary racemes, on short lateral branches, each inflorescence having 8-12 buds. It is both, a self and a cross pollinated species, and the flowering period extends from December to mid April. The wood is greyish or yellowish brown, close grained and mould with light streaks and is tough, strong and durable. Fruit is capsule, matures during May to June and 15-20 cm long pods, slightly curved and brownish grey. The seeds are light, narrowly winged, 2 cm long and 8 mm broad and are dispersed by the wind. Seed viability is greatest immediately post-harvest and is reported to decline to zero after one year.

Silviculture : This species regenerates easily from seed and requires no pre-treatment although soaking the seed in cold water for three to four hours has been effective in producing uniform germination. The seedlings are raised in polythene bags filled with soil, sand and farm yard manure in equal proportion. The best time of seed sowing is immediately after collecting the seeds in June-July. About 8-9 months old seedlings are transplanted. The seedlings can be transplanted at 5×5 m or more spacing.

It is a slow growing species. However, tissue culture techniques have been developed for the rapid propagation of Rohira. Multiple shoot formation was obtained from 8 to 10 mm bud explants taken from a plus tree and placed in Murashige and Sloog's (MS) medium, rooting was achieved on a medium containing NAA or IBA 0.5-1.0 mgl-1), whilst and 2,4-D and IAA it produced callus. The tree coppice well.

Uses

Rohira is an important and valuable timber tree. The wood is very hard, close grained strong greyish to yellow brown in colour and is used for making toys, fine carving work, furniture and agricultural implements. The twigs and branches are used as fuelwood. The leaves and raw fruits provide fodder for cattle. The leaves are rich in protein and minerals and provide mainly supplemental feed with protein and crude fiber contents of 12.20 and 15.8%, respectively. The flowers are rich in nectar and pollen and are a potential source of honey.

Rohira is a true agroforestry species for arid climates. Generally, guar, sorghum, wheat, gram and mustard are grown in association with this species. Grass and other perennial provide a high air dry forage yield under its canopy.

The population of soil microorganism was also found to be high under its canopy. Soil physio-chemical investigations revealed generally high N.P and K levels beneath the canopy and increased soil fertility status with respect to organic carbon, total nitrogen, phosphorus and available macro and micro nutrients.

Phyto-chemical studies of plant parts of rohira have lead to identification of pharmacologically relevant compounds such as, Iridoid glucoside, naphthoquinone, phytosterols, flavonoid glycoside, flavonol, fatty alcohol, fatty acid and triterpenoids. It is reputed to be of considerable medicinal value in Ayurveda and traditionally, it is extensively used for treatment of several diseases like liver, spleen, internal tumours, diseases of abdomen, wound healing, conjunctivitis, hepatosplenomegaly, blood purifier, syphilis, gonorrhea and rewarding in hepatitis. Pharmacological studies have also reported its anti-HIV, antibacterial activity, analgesic and anti inflammatory, anti-oxidants and hepatoprotective.

[1]Department of Botany and Plant Physiology, CCSHAU, Hisar

Low Cost Storage Facility for Fresh Fruits and Vegetables

✍ **Sumit Deswal and Manender Singh**
Department of Horticulture
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

One of the most important period for fruits and vegetables is from the time it is picked/harvested until it is disposed to the consumer. The period is commonly referred as post-harvest life. Fruits and vegetables are highly perishable commodities. These are affected by number of internal and external factors which lead to the post-harvest losses. Horticultural products are stored at lower temperature because of their highly perishable nature. There are many methods to cool the storage environment. Hence, storage of these types of foods in their fresh form demands that the chemical, bio-chemical and physiological changes are restricted to a minimum by close control of space temperature and humidity. The high cost involved in developing cold storage or controlled atmosphere storage is a pressing problem in developing countries like India. Evaporative cooling is a well-known system to be an efficient and economical means for reducing the temperature and increasing the relative humidity in an enclosure and the evaporative cooler has prospect for use for short term preservation of vegetables and fruits soon after harvest. Zero energy cooling system could be used effectively for short-duration storage of fruits and vegetables. It not only reduces the storage temperature but also increases the relative humidity of the storage which is essential for maintaining the freshness of the commodities and increase shelf life.

Zero energy cool chamber (ZECC) is a immovable cooling chamber developed by S. K. Roy and D. S. Khurdiya, Indian Agricultural Research Institute (IARI), New Delhi, for short duration storage of fruits and vegetables on the farm. It is a double walled structure and the gap of about 75 mm (3") between the two walls is filled with sand. It is covered by a cover made of cane or sack. The sand is saturated with water to keep it moist. As the water evaporates, it removes the heat from within the chamber through the process of evaporative cooling. The chamber can keep the temperature 10-15°C cooler than the outside temperature and maintain about 90 per cent relative humidity. It is suitable for almost all fruits and vegetables except onion, garlic, ginger, potato, etc. as these crops require lower relative humidity (65-80 per cent). The principle of ZECC is based on evaporative cooling, *i.e.* cooling effect created due to evaporation of water. The ZECC maintains the relative humidity inside the cooling chamber relatively higher than that outside the chamber which helps in lowering the temperature inside the cool chamber as compared to ambient temperature. The temperature variations inside the cool chamber happen to be very low as compared to outside fluctuation in mercury.

The main advantages of this on-farm low cost cooling technology are :

1. It does not require any electricity or power to operate
2. Materials required like bricks, sand, bamboo, etc. are easily available.
3. Even unskilled labour can build the chamber, as it does not require any specialized skill.
4. Cool chambers can reduce temperature by 10-15°C and maintain high humidity of about 95 per cent. It can increase shelf life and retain quality of horticultural produce.

Materials Required

1. Bricks 2. Sand 3. Bamboo 4. Gunny bags 5. Straw

Site Selection

1. It should be cool and shady area
2. The area should be raised with proper drainage
3. It should be near the water source

Construction

1. Select an-upland having a nearby source of water supply.
2. Make floor with brick 165 x 115 cm.
3. Erect the double wall to a height of 67.5 cm leaving a cavity of 7.5 cm.
4. Drench the chamber with water. Soak the fine river bed sand with water.
5. Fill the 7.5 cm cavity between the double walls with this wet sand.
6. Make top cover with bamboo (165 x 115 cm) frame and '*sirki*' straw or dry grass.
7. Cover tin shed made over chamber to protect from direct sun, rain or snow.

Approximate cost of cool chamber (100 kg capacity)

Brick (400 Nos.)	Rs. 1000.00
Sand	Rs. 100.00
Bamboo, khas khas, etc. for top cover	Rs. 300.00
Thatched shed	Rs. 500.00
Water tank, pipes, tubes poly sheet, etc.	Rs. 600.00
Plastic crates (6 Nos.)	Rs. 1200.00
Labour	Rs. 300.00
Total cost	**Rs. 4000.00**

Operation

- Keep the sand, bricks and top cover of the chamber wet with water.
- Water twice daily (morning and evening) to achieve desired temperature and relative humidity. Alternatively fix a drip system for watering with plastic pipes and micro tubes connected to an overhead water source.
- Store the fruits and vegetables in perforated plastic crates.
- Cover crates with thin polyethylene sheet.
- Cool chamber should be reinstalled once in three years with new bricks.
- Utilize the old bricks for other purposes.

Physiological Disorders of Potato : Their Management

✍ **Vinod Kumar, S.K. Tehlan and Vikash Kumar**
Department of Vegetable Science
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Internal Brown Fleck/Spot

Symptoms : Affected tubers do not normally display external symptoms of brown spot.

- Typical symptoms are irregular brown flecks that primarily occur in the vascular bundle ring.
- Brown fleck often occurs in large tubers.
- Brown fleck occurring near the apical section of the tuber is formed at the end of the season, while brown fleck near the stolon end is formed when the tubers are small.

Causes

- The primary cause of brown flecks localized shortages in calcium. Shortages in Ca causes the loss of the integrity of cell membranes and cell walls under stress conditions.
- Environmental factors that lead to brown fleck include air and soil temperature, soil types and moisture.
- Calcium uptake and transportation in the plant occur almost exclusively through the transpiration stream from the roots to stems, leaves and tubers.

Management : Ensure that sufficient Ca is available for uptake where and when tubers are formed. Where granular fertilizer is used, the Ca must be available in the whole tuber zone.

Opting for planting times to avoid high temperatures during tuber formation and harvesting, reduces the risk associated with brown fleck.

- Avoid cultivars that are prone to brown fleck, especially if it is planted during warm periods of the year.
- Avoid stress conditions at the beginning of the growing season through proper fertilization and irrigation practices.
- Ensure that Ca uptake is not limited by an imbalance between nutritional elements or unfavorable pH.

Brown Core and Hollow Heart

Symptoms : Cultivars differ in their susceptibility to brown core and hollow heart.

- Under specific conditions, brown core and hollow heart are regarded as two different stages of the same disorder and are most probably caused by the same conditions.
- Hollow heart, however, can develop independent of brown core and tends to occur in large tubers.
- The cavities can appear lengthwise or diagonal in the tuber and also have irregular shapes.
- The tissue lining the cavities can be white or brown and skin tissue is sometimes formed.
- Cavities can appear at different places in the tuber, depending on the time in the season it develops.
- If small tubers with brown cores develop slowly and consistently, the dead brown cells spread in between the normal living cells.

Causes

- Brown core develops when tubers are very small and temperature is low (<15°C), especially during tuber initiation up to the tuber reaching 50g. Cells die, turn brown and can easily tear apart.
- If small tubers with brown core grow fast and/or inconsistently, the cells in the brown core can tear apart and as the tuber enlarges, hollow heart develops.
- Hollow heart, that is not preceded by brown core, is associated with high growth tempo of tubers, fluctuating soil moisture and sometimes with high levels of nitrogen and/or insufficient calcium.

Management : Prevention of brown center and hollow heart is difficult, but measures below can reduce the risk of these defects.

- Select cultivars that are less prone to the disorder
- Avoid over-irrigation
- Avoid a low plant population
- If brown center occurs regularly in early plantings, consider planting later when temperatures are slightly higher
- Endeavour to maintain uniform conditions throughout the season by managing fertilization and irrigation

Cold Damage

Symptoms : Cold damage can occur on the surface of tubers exposed to sub-zero temperatures, but symptoms of cold damage are mostly inside the tubers, often in the vascular tissue and the stem end of the tuber.

- Exposure for short periods to temperatures around 2°-0°C can result in grey or reddish tissue. The tissue can also turn dark grey or black.
- The ability of seed potatoes with cold damage to sprout, are often affected negatively.
- If tubers with cold damage are fried, the chips turn dark in color. If tubers are cooked, the tissue of such tubers goes grey or black.

Causes : Exposure of tubers to temperatures that vary from just above (2°C) or below freezing-point.

- Tubers close to the soil surface, especially after foliage die-off, are exposed to cold damage.
- Seed potatoes that are transported in the winter without the necessary protection are exposed to the risk of cold damage.
- Seed potatoes that are stored under conditions of insufficient protection against low temperatures and cold winds, e.g. stacked under trees.
- If the temperature drops too low during cold storage.

Management : Do not leave harvested tubers on the land overnight, especially if low temperatures are expected.

- Avoid cultivars that tend to bear shallow in regions with low temperatures at the end of the growing season.
- Do not store seed potatoes on the farm if the correct conditions are not available.
- If seed potatoes must be transported in winter, the consignment must be properly covered and it must be done during the day.
- Ensure that mechanisms are in place for proper temperature control during cold storage.
- Harvest plantings with tubers close to the soil surface before the first cold front is expected.

Black Heart

Symptoms :

- The inside of the tubers are greyish black to black and the affected tissue is normally well defined.
- A cavity can form inside the black heart. The affected tissue is hard and leathery.
- Because the symptom is not a result of rotting, no bad odour is present.
- Black heart often occurs in large tubers.

Causes : Develops as a result of an oxygen shortage or an over supply of CO_2 whizzch causes the tissue to die, especially if the oxygen shortage is accompanied by high temperatures.

- Black heart can develop during storage and transportation if oxygen is insufficient as a result of poor ventilation, especially at high temperatures (32°C).
- Black heart can also occur in the potato field if high temperature follows excessive rain which causes an oxygen shortage in the soil.
- When seed planted by hand lie in furrows for a long time before being covered by soil, especially when it is very hot.

Management : After harvesting do not leave tubers in the sun on trailers under tarpaulins.

- Ensure sufficient ventilation during storage and transportation.
- Avoid fields with poor drainage if rain is received in the after season.
- Make sure that lifted tubers are picked up as soon as possible.
- Cover seed tubers in furrows as soon as possible after planting.

Management : Irrigation prior to foliage die-off decreases the incidence of vascular browning, irrespective of the method of foliage die-off.

Greening

Symptoms : Greening of the tissue immediately under the skin.

- The intensity may differ and may also be accompanied by sunburn.

Causes : Greening occurs when tubers are exposed to light (sun or artificial). Chlorophyll then forms in cells immediately under the skin.

- Tubers appearing near the soil surface, whether through planting too shallow, soil cracks, erosion, or cultivars prone to form long stolons or carrying shallowly are exposed to sunlight.
- Greening may also occur when tubers are exposed to light after harvesting during storage or display in stores.
- Excessive nitrogen application, early in the season, may cause stolons to grow longer than normal.

Management : Avoid cultivars that are prone to bear shallowly.

- Plant in well prepared soils.
- Avoid high nitrogen application, especially with cultivars that are prone to form long stolons.
- If possible, irrigate to prevent cracks occurring during dry weather conditions.
- If tubers are exposed after foliage die-off, it can be ridged to cover it with soil.
- Do not expose tubers to light for long periods after harvesting.
- Use packaging materials that provide sufficient protection against light transmission if potatoes are exposed to light for more than a few days. White paper transmits more light than brown.

Growth Cracks

Symptoms : Growth cracks vary in depth and length, but normally occur in the length of the tuber.

- Initially, the tuber tissue is exposed, but a thin skin is later formed.
- Some cultivars are more inclined to crack, *e.g.* mondial.

Causes : Growth cracks occur during varying soil moisture conditions.

- Tubers crack when a dry period is followed by heavy rains or over-irrigation. Moisture uptake causes a quick increase in tuber moisture and growth and consequently an increase in tuber size.
- Uneven plant population, over-fertilization with nitrogen and nutrient imbalances contribute to the occurrence of growth crack.
- Application of large amount of nitrogen at one time after tuber formation.

Management : Avoid cultivars that are prone to crack if growth cracks regularly occur and causes loss in income.

- Where possible ensure uniform growing conditions, even plant population, good irrigation scheduling and good fertilization practices.

Enlarged Lenticels

Symptoms : Raised, white callus-like tissue on the surface of the tubers. The size may vary from inconspicuous to large.

- When tubers are removed from wet soil, the raised tissue is white, but it desiccates under dry conditions.
- When tubers with enlarged lenticels are brushed, the white tissue is removed and the underlying tuber tissue is exposed. Under favorable conditions, the exposed tissue is later covered by wound healing.

Causes: Under normal conditions, the lenticel is a small opening lined by cork cells that allows gas exchange between tuber tissue and the environment.

- Enlarged lenticels are formed under conditions of oxygen shortage and excessive moisture in the soil surrounding the tubers, or in storage as the cells beneath the lenticels expand and the cell mass breaks through the corky layer.

Management : Avoid fields that are prone to water-logging.

- Reduce irrigation two weeks prior to harvesting by irrigating when the plant available water is 40 -50%. • If tubers with enlarged lenticels are harvested, it must be dried as soon as possible.
- Seed potatoes from waterlogged sections must be kept separately from other seed potatoes when warm moist conditions prevail.

Sprouting

Symptoms : Potatoes start to sprout when it is harvested, especially when tubers have been left in the soil for long.

- Normally, it is only the apical eyes that sprout.
- Roots can also form at the basal part of the sprout.

Causes : Sprouting on the land is normally an indication that the cultivar is not adapted to the cultivation practices of a specific area.

- Normally, it is cultivars with a short dormant period that sprout on the land.
- Sprouting is promoted by high temperature before harvesting.

Management : Evaluate new cultivars for at least three years in the production area and follow normal cultivation practices to identify cultivars that are not totally adapted.

Loose Skin

Symptoms : Loose skin occurs when tubers are handled.

- The skin is totally or partially removed from the tubers leading to the underlying tuber tissue being exposed.
- Loose skin causes the tubers to be more prone to weight loss and infection by post-harvest pathogens.
- The underlying tissue browns after a few hours to cause browning.

Causes: Loose skin is common when young tubers are handled.

- Excessive application of nitrogen, late in the season and wet soil, may delay ripening and promote loose skin.

Management : Top-growth must be completely dead 14 to 21 days prior to harvesting to promote skin setting.

- Ensure that the harvester is properly set to prevent tuber damage.